Year 9, Issue 34
April - June, 2012

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

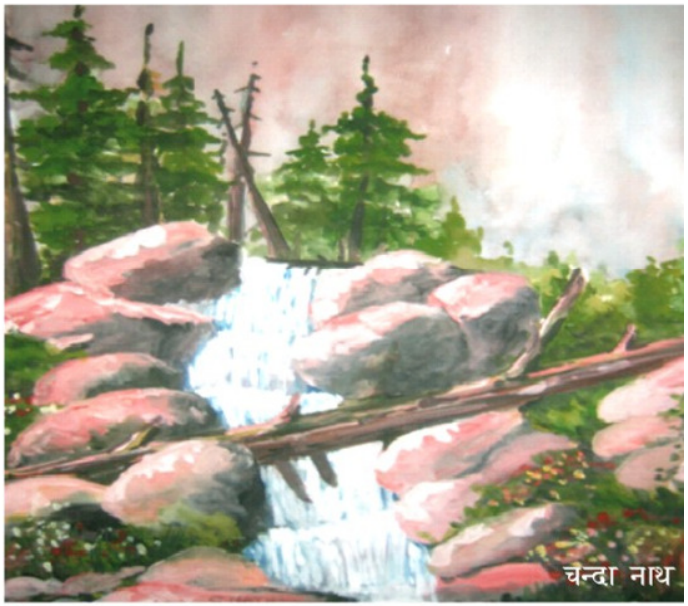

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष ९ - अंक ३४, अप्रैल-जून, २०१२

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION
EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

मधुमास आ गया

पीयूष कुमार

रंग संग ले मधुमास आ गया
दसों दिशा में उल्लास छा गया.

गेंदा, कनेर, पुष्पित अनार है,
अब पेड़ों पर छायी बहार है,
नूतन पल्लव पीपल पाकड़ में,
कल पलास वन रमन मन भा गया.

फूली सरसों गेहूँ गदराये,
कूकी कोयल सौरभ बौराये,
बाजी पायल चना मटर पग में,
बेर पेड़ में शुकवास हो गया.

महुआ परिमल मद-मस्त कर गयी,
गुड़ बनता है यह पवन कह गयी,
ख़ुश है विरहन कई बरसों बाद
बिछड़ा था जो वह पास आ गया.

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
तुलसी आँगन दीप धरें, आओ माँ को प्यार करें	महेंद्र कुमार सिरोठिया	३
घायल बसन्त	हरिशंकर परसाई	४
वर्षा हाइकु	डॉ. कुँअर बेचैन	६
वापसी	डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'	८
न देखो पीर उर की	डॉ. शेरजंग गर्ग	११
आवश्यक है इच्छाओं के जंजाल से मुक्ति	डॉ. पूर्ण सिंह डबास	१२
कैसी दौड़!	स्नेह ठाकुर	१५
श्रीसीताराम केलिकौमुदी : एक गवेषणा	डॉ. गीता देवी मिश्रा	१७
शिक्षा का जोश	कृष्ण मुरारी चौरसिया	२१
बने रहो जोगी	डॉ. सुरेश प्रकाश शुक्ल	२२
मुझको इतने से काम पर रख लो	गुलजार	२३
कविता अटल बिहारी की	डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल	२४
पाखी	कमल कपूर	३१
चित्रकूट वैशिष्ट्यम्	हेमराज चतुर्वेदी 'नन्हें राजा'	३२
गीत	प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र	३३
मँगतों का व्यापारी	मधुप शर्मा	३४
एक चाह : एक सलाह	डॉ. अम्बाशंकर नागर	३९
विरह विगलित कदम्ब	पुष्पा भारती	४०
बारिश	सुमतिन्द्र नाडिग अनुवादक : उपेन्द्र नाथ 'अनन्य'	४२
अहसास	विष्णु प्रभाकर	४४
मधुमास आ गया	पीयूष कुमार	१अ
अभिलाषा	आदित्य मोहन	४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534
वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00
डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.....$35.00, Other Countries.....$40.00
Website: http://www.Vasudha1.webs.com
e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

'वसुधा' के पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल द्वारा हिन्दी में पहला ऐतिहासिक ग्रंथ 'सामाजिक विज्ञान हिन्दी विश्व कोश' पाँच भागों में प्रकाशित हुआ है जिसमें डेढ़ हजार पृष्ठ तथा तीन सौ पचास प्रविष्टियाँ हैं. भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा विश्वकोश-समिति के संरक्षक रहे हैं. विश्वकोश के प्रधान संपादक (मानद) वरिष्ठ साहित्यकार पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि हैं जो आजकल 'विश्व हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ के मानद प्रधान संपादक भी हैं. हिन्दी में अपने ढंग का यह पहला कार्य अब तक प्रकाशित हिन्दी साहित्य के सभी इतिहासों से हट कर होगा. इस ग्रंथ में हिन्दी साहित्य के इतिहासों का विवरण, देश-विदेश का हिन्दी साहित्य (प्रवासी, रोमा, यायावर साहित्य), हिन्दी-इतर भाषा-भाषी साहित्य, समीक्षा साहित्य, अनुवाद साहित्य, आदिवासी दलित साहित्य, नारी-विमर्श साहित्य, बाल साहित्य, इंटरनेट हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी सेवी संसार व देश-विदेश की प्रतिष्ठित हिन्दी पत्रिकाओं का परिचय आदि समाहित होगा.

रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल के फ़ैलो आजीवन सदस्य के रूप में, विश्व-संवाद चेयर पर्सन के रूप में तथा 'विश्व हिन्दी साहित्य का इतिहास' समिति में सहयोगी संपादक एवं संयोजक के रूप में, मैं 'विश्व हिन्दी साहित्य का इतिहास' के लिये कार्य कर रही हूँ. इस दिशा में विश्व के सभी हिन्दी साहित्यकारों, हिन्दी प्रेमियों के द्वारा दिये गये अतुलनीय, अपूर्व, सहर्ष सहयोग की हार्दिक आभारी हूँ.

'विश्व हिन्दी साहित्य का इतिहास' के सन्दर्भ में ही कैनेडा की राजधानी ऑटवा के सप्ताहांत के हिन्दी स्कूल मुकुल के सातवीं कक्षा की अध्यापिका श्रीमती अरुणा गुप्ता ने, अपने पति श्री कमलेश गुप्ता, जो स्वयं भी हिन्दी पढ़ा रहे हैं, मेरे निवास-स्थान पर आकर, अन्य वस्तुओं के साथ ही मुझे एक अमूल्य उपहार दिया; कुछ बच्चों द्वारा लिखी हुई थोड़ी-सी रचनाएँ जिसमें 'वसुधा' में प्रकाशित आदित्य मोहन की कविता भी है. इसको पढ़कर यह भावना अवश्य सुदृढ़ होती है कि यहाँ की नयी पीढ़ी हिन्दी एवं भारतीय संस्कारों के प्रति जागरूक हैं. साहित्यिक दृष्टि से अभी रचनाएँ साहित्यिक चरमोत्कर्ष न हों तथापि हिन्दी हेतु उनकी कोमल भावनाएँ हमें हिन्दी के प्रति उनके गर्व का एहसास अवश्य कराती हैं, और यह भाषा का चरमोत्कर्ष है. यह अनुभूति, उनका यह पक्ष, नयी पीढ़ी का यही हिन्दी प्रेम हमें आश्वस्त कराता है कि हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है.

प्रिय विष्णु प्रभाकर जी की जन्म-शती मनायी जा रही है. इस अवसर पर उन्ही के द्वारा लिखी गयी कविता 'अहसास' प्रिय विष्णु प्रभाकर जी को उनकी जन्म-शताब्दी पर स्मृति-स्वरूप श्रद्धांजलि के रूप में 'वसुधा' उनको सादर, सस्नेह समर्पित कर रही है. पाठक उनकी भाव-भीनी अभिव्यक्ति को पढ़कर आनंदित होंगे. साहित्य कालजयी होता है; विष्णु जी अपनी रचनाओं द्वारा सदा ही पाठकों के दिल में बसे रहेंगे.

विश्व हिन्दी सचिवालय में महासचिव माननीया श्रीमती पूनम जुनेजा ने कार्यभार सँभाल प्रतियोगिताओं द्वारा हिन्दी को एक और नयी दिशा देने का महती प्रयास किया है जो अत्यन्त प्रशंसनीय है. हिन्दी के प्रति समर्पित वसुधा, उनका एवं सम्पादक श्रीगंगाधर सिंह व संपादन-मण्डल का अभिनन्दन करती है.

अप्रैल का माह कैनेडा में नव वसन्त लाता है, नव-जीवन का उत्साह जगाता है. वसन्त की इस ऊर्जा और उत्साह की डोर थामे, आइए हम सभी हिन्दी प्रेमी हिन्दी के उत्थान के प्रति दृढ़ संकल्प हो, हिन्दी को यू.एन.ओ. की आधिकारिक भाषा बनाने हेतु प्रगति-पथ पर बढ़ते चलें.

इसी मंगलमय कामना के साथ, सस्नेह, स्नेह ठाकुर

तुलसी आँगन दीप धरें आओ माँ को प्यार करें

महेन्द्र कुमार सिरोठिया

बाँट रहे धन-दौलत, सोना-चाँदी, हल-बैल, घर-द्वार,
माँ तो हम सबकी, मत बँटने देना माँ का प्यार.
आओ सब मिल माँ के दुःख हरें
तुलसी आँगन दीप धरें, आओ माँ को प्यार करें.
जो माँ न होती हम न होते, किस्मत वाले होते जिनकी माँ होती,
जीवन भर रोते जिन बदनसीबों की माँ नहीं होती.
माँ तो माँ होती, हमारे सुख-दुःख में सदा साथ रहती,
हमारी खुशियों में ख़ुश होती, दुखों में है नयन भिगोती.
जब चोट हमें लगती है घायल माँ है होती,
माँ अपने आँचल से हमारे दुखों के आँसू धोती.
अपने मुँह का निवाला हमें खिलाकर खुद भूखी-प्यासी रह लेती,
हमें लिहाफ़ उढ़ाकर सुलाती, ख़ुद सर्दी में ठिठुरती रहती.
आँधी-तूफ़ानों से लड़ लेती, दुनिया के दुख हँसकर सह लेती,
दुनिया में केवल एक माँ है जो हमसे कभी ख़फ़ा नहीं होती.
लब पर माँ के सदा हमारी खुशहाली की दुआ होती,
माँ वात्सल्य, ममतामयी, करुणा की अबाध निर्झरणी-सी बहती.
माँ तो माँ होती सदा हमारे दिल में रहती,
आओ सब मिल कर माँ के दुख हरें.
तुलसी आँगन दीप धरें, आओ माँ को प्यार करें,
माँ घर की छत्र-छाया, घर-आँगन में तरुवर की शीतल छाया.
माँ घर में वंदनवार, स्वागत-द्वार, माँ जीवन की नैया-पतवार,
माँ से घर में जश्न उत्सव, तीज त्यौहार, रिश्ते, नाते, व्यवहार.
माँ से घर रहता गुलजार माँ खुशियों की है बहार,
माँ धूप-गर्मी में शीतल बयार, माँ बारिश की शीतल फुआर.
माँ के आँचल में जन्नत घर-संसार, माँ लाड़-प्यार, दुलार,
आओ माँ के दुख हरें.
तुलसी आँगन दीप धरें, आओ माँ को प्यार करें,
माँ के आशीषों से हमने सुखमय जीवन पाया.
माँ ने हमें अँगुली पकड़ जीवन-पथ पर चलना सिखाया,
हमें बोलना सिखाया, मुश्किलों में हँसना सिखाया, जीवन का है पाठ पढ़ाया.
मार्ग के काँटे बुहारकर, मंजिलों को है सुगम बनाया,
माँ ने जीवनदान दिया, मीठे वचनों का अमृत-पान कराया.
माँ की महिमा अपरंपार, माँ जन्मदात्री, माँ है पालनहार,
माँ सृष्टि का उपहार, माँ के हम पर अनंत उपकार.
माँ जैसा कोई दुनिया में हो नहीं सकता, माँ का कर्ज़ हम सात जनम चुका नहीं सकते.
माँ से हमें कितना प्यार, शब्दों में हम बता नहीं सकते.
माँ है तारनहार, माँ के चरण-कमलों में है स्वर्ग-संसार,
आओ माँ के दुख हरें,
तुलसी आँगन दीप धरें, आओ माँ को प्यार करें.

घायल बसंत

हरिशंकर परसाई

कल बसन्तोत्सव था। कवि बसन्त के आगमन की सूचना पा रहा था....

प्रिय, फिर आया मादक बसन्त' ।

मैंने सोचा, जिसे बसन्त के आने का बोध भी अपनी तरफ से कराना पड़े, उस प्रिय से तो शत्रु अच्छा। ऐसे नासमझ को प्रकृति-विज्ञान पढ़ायेंगे या उससे प्यार करेंगे। मगर कवि को न जाने क्यों ऐसा बेवकूफ पसन्द आता है। कवि मग्न होकर गा रहा था – 'प्रिय, फिर आया मादक बसन्त !'

पहली पंक्ति सुनते ही मैं समझ गया कि इस कविता का अन्त 'हा हन्त' से होगा, और हुआ। अन्त, सन्त, दिगन्त आदि के बाद सिवा 'हा हन्त' के कौन पद पूरा करता ? तुक की यही मजबूरी है। लीक के छोर पर यही गहरा गढ़ा होता है। तुक की गुलामी करोगे तो आरम्भ चाहे 'बसन्त' से कर लो, अन्त जरूर 'हा हन्त' से होगा। सिर्फ कवि ऐसा नहीं करता। और लोग भी, सयाने लोग भी, इस चक्कर में होते हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में तुक पर तुक बिठाते चलते हैं। और 'वसन्त' से शुरू करके 'हा हन्त' पर पहुँचते हैं। तुकें बराबर फ़िट बैठती हैं, पर जीवन का आवेग निकल भागता है। तुकें हमारा पीछा छोड़ ही नहीं रही हैं। हाल ही में हमारी समाजवादी सरकार के अर्थमन्त्री ने दबा सोना निकालने की जो अपील की, उसकी तुक शुध्द सर्वोदय से मिलायी -- 'सोना दबाने वालो, देश के लिए स्वेच्छा से सोना दे दो।' तुक उत्तम प्रकार की थी; साँप तक का दिल नहीं दुखा। पर सोना चार हाथ और नीचे चला गया। आखिर कब हम तुक को तिलांजलि देंगे ? कब बेतुका चलने की हिम्मत करेंगे ?

कवि ने कविता समाप्त कर दी थी। उसका 'हा हन्त' आ गया था। मैंने कहा, 'धत्तेरे की !' ७ तुकों में ही टें बोल गया। राष्ट्रकवि इस पर कम-से-कम ५१तुकें बाँधते। ९ तुकें तो उन्होंने 'चक्र' पर बाँधी हैं। (देखो 'यशोधरा' पृष्ठ १३) पर तू मुझे क्या बतायेगा कि बसन्त आ गया। मुझे तो सुबह से ही मालूम है। सबेरे वसन्त ने मेरा दरवाजा भी खटखटाया था। मैं रजाई ओढ़े सो रहा था। मैंने पूछा – "कौन?" जवाब आया-- मैं वसन्त। मैं घबड़ा उठा। जिस दूकान से सामान उधार लेता हूँ, उसके नौकर का नाम भी वसन्तलाल है। वह उधारी वसूल करने आया था। कैसा नाम है, और कैसा काम करना पड़ता है इसे ! इसका नाम पतझड़दास या तुषारपात होना था। वसन्त अगर उधारी वसूल करता फिरता है, तो किसी दिन आनन्द कर-थानेदार मुझे गिरफ्तार करके ले जायेगा और अमृतलाल जल्लाद फाँसी पर टाँग देगा !

वसन्तलाल ने मेरा मुहूर्त बिगाड़ दिया। इधर से कहीं ऋतुराज वसन्त निकलता होगा, तो वह सोचेगा कि ऐसे के पास क्या जाना जिसके दरवाजे पर सबेरे से उधारीवाले खड़े रहते हैं! इस वसन्तलाल ने मेरा मौसम ही खराब कर दिया।

मैंने उसे टाला और फिर ओढ़कर सो गया। आँखें झँप गयीं। मुझे लगा, दरवाजे पर फिर दस्तक हुई। मैंने पूछा....कौन? जवाब आया—"मैं वसन्त !" मैं खीझ उठा - कह तो दिया कि फिर आना। उधर से जवाब आया—"मै! बार-बार कब तक आता रहूँगा ? मैं! किसी बनिये का नौकर नहीं हूँ। ऋतुराज वसन्त हूँ। आज तुम्हारे द्वार पर फिर आया हूँ और तुम फिर सोते मिले हो। अलाल, अभागे, उठकर बाहर तो देख। ठूँठों ने भी नव पल्लव पहिन रखे हैं। तुम्हारे सामने की प्रौढ़ा नीम तक नवोढ़ा से हाव-भाव कर रही है....और बहुत भद्दी लग रही है।

मैने मुँह उधाड़कर कहा, भई, माफ़ करना , मैंने तुम्हें पहचाना नहीं। अपनी यही विडम्बना है कि ऋतुराज वसन्त भी आये, तो लगता है, उधारी के तगादेवाला आया। उमंगें तो मेरे मन में भी हैं, पर यार,

ठण्ड बहुत लगती है। वह जाने के लिए मुड़ा। मैंने कहा, जाते-जाते एक छोटा-सा काम मेरा करते जाना। सुना है तुम ऊबड़-खाबड़ चेहरों को चिकना कर देते हो ; 'फेसलिफ्टिंग' के अच्छे कारीगर हो तुम। तो जरा यार, मेरी सीढ़ी ठीक करते जाना, उखड़ गयी है।

उसे बुरा लगा। बुरा लगने की बात है। जो सुन्दरियों के चेहरे सुधारने का कारीगर है, उससे मैंने सीढ़ी सुधारने के लिए कहा। वह चला गया।

मैं उठा और शॉल लपेटकर बाहर बरामदे में आया। हज़ारों सालों के संचित संस्कार मेरे मन पर लदे हैं; टनों कवि- कल्पनाएँ जमी हैं। सोचा, वसन्त है तो कोयल होगी ही। पर न कहीं कोयल दिखी न उसकी कूक सुनायी दी। सामने की हवेली के कँगूरे पर बैठा कौआ 'काँव-काँव' कर उठा। काला, कुरूप, कर्कश कौवा....मेरी सौदर्य-भावना को ठेस लगी। मैंने उसे भगाने के लिए कंकड़ उठाया। तभी खयाल आया कि एक परम्परा ने कौवे को भी प्रतिष्ठा दे दी है। यह विरहणी को प्रियतम के आगमन का सन्देसा देने वाला माना जाता है। सोचा, कहीं यह आसपास की किसी विरहणी को प्रिय के आने का सगुन न बता रहा हो। मैं विरहणियों के रास्ते में कभी नहीं आता; पतिव्रताओं से तो बहुत डरता हूँ। मैंने कंकड़ डाल दिया। कौआ फिर बोला। नायिका ने सोने से उसकी चोंच मढ़ाने का वायदा कर दिया होगा। शाम की गाड़ी से अगर नायक दौरे से वापिस आ गया, तो कल नायिका बाजार से आनेवाले सामान की जो सूची उसके हाथ में देगी, उसमें दो तोले सोना भी लिखा होगा। नायक पूछेगा, प्रिये, सोना तो अब काला बाजार में मिलता है। लेकिन अब तुम सोने का करोगी क्या? नायिका लजाकर कहेगी, उस कौए की चोंच मढ़ाना है, जो कल सेबेरे तुम्हारे आने का सगुन बता गया था। तब नायक कहेगा, प्रिय, तुम बहुत भोली हो। मेरे दौरे का कार्यक्रम यह कौआ थोड़े ही बनाता है; वह कौआ बनाता है जिसे हम 'बड़ा साहब' कहते हैं। इस कलूटे की चोंच सोने से क्यों मढ़ाती हो? हमारी दुर्दशा का यही तो कारण है कि तमाम कौए सोने से चोंच मढ़ाये हैं, और इधर हमारे पास हथियार खरीदने को सोना नहीं हैं। हमें तो कौओं की चोंच से सोना खरोंच लेना है। जो आनाकानी करेंगे, उनकी चोंच काटकर सोना निकाल लेंगे। प्रिये, वही बड़ी ग़लत परम्परा है, जिसमें हंस और मोर की चोंच तो नंगी रहे, पर कौए की चोंच सुन्दरी खुद सोना मढ़े। नायिका चुप हो जायेगी। स्वर्ण-नियन्त्रण कानून से सबसे ज्यादा नुकसान कौओं और विरहणियों का हुआ है। अगर कौए ने १४ कैरेट के सोने से चोंच मढ़ाना स्वीकार नहीं किया, तो विरहणी को प्रिय के आगमन की सूचना कौन देगा? कौआ फिर बोला। मैं इससे युगों से घृणा करता हूँ; तब से, जब इसने सीता के पांव में चोंच मारी थी। राम ने अपने हाथ से फूल चुनकर, उनके आभूषण बनाकर सीता को पहनाये। इसी समय इन्द्र का बिगडैल बेटा जयन्त आवारागर्दी करता वहाँ आया और कौआ बनकर सीता के पाँव में चोंच मारने लगा। ये बड़े आदमी के बिगडैल लड़के हमेशा दूसरों का प्रेम बिगाड़ते हैं। यह कौआ भी मुझसे नाराज है, क्योंकि मैंने अपने घर के झरोखों में गौरैयों को घोंसले बना लेने दिये हैं। पर इस मौसम में कोयल कहाँ हैं? वह अमराई में होगी। कोयल से अमराई छूटती नहीं है, इसलिए इस वसन्त में कौए की बन आयी है। वह तो मौक़ापरस्त है ; घुसने के लिए पोल ढूँढता है। कोयल ने उसे जगह दे दी है। वह अमराई की छाया में आराम से बैठी है। और इधर हर ऊँचाई पर कौआ बैठा 'काँव-काँव' कर रहा है। मुझे कोयल के पक्ष में उदास पुरातन प्रेमियों की आह भी सुनायी देती है, 'हाय, अब वे अमराइयाँ यहाँ कहाँ है कि कोयलें बोलें। यहाँ तो ये शहर बस गये हैं, और कारखाने बन गये है।' मैं कहता हूँ कि सर्वत्र अमराइयाँ नहीं है, तो ठीक ही नहीं हैं। आखिर हम कब तक जंगली बने रहते? मगर अमराई और कुंज और बगीचे भी हमें प्यारे हैं। हम कारखाने को अमराई से घेर देंगे और हर मुहल्ले में बगीचा लगा देंगे। अभी थोड़ी देर है। पर कोयल को धीरज के साथ हमारा साथ तो देना था। कुछ दिन धूप तो हमारे साथ सहना था। जिसने धूप में साथ नही दिया, वह छाया कैसे बँटायेगी? जब हम अमराई बना लेंगे, तब क्या वह उसमें रह सकेगी? नहीं, तब तक तो कौए अमराई पर क़ब्जा कर लेंगे। कोयल को अभी आना

चाहिए। अभी जब हम मिट्टी खोदें, पानी सींचे और खाद दें, तभी से उसे गाना चाहिए। मैं बाहर निकल पड़ता हूँ। चौराहे पर पहली बसन्ती साड़ी दिखी। मैं उसे जानता हूँ। यौवन की एड़ी दिख रही है....वह जा रहा है....वह जा रहा है। अभी कुछ महीने पहले ही शादी हुई है। मैं तो कहता आ रहा था कि चाहे कभी ले, 'रूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी' - (निराला)। उसने वसन वासन्ती ले लिया। कुछ हजार में उसे यह बूढ़ा हो रहा पति मिल गया। वह भी उसके साथ है। वसन्त का अन्तिम चरण और पतझड़ साथ जा रहे हैं। उसने माँग में बहुत-सा सिन्दूर चुपड़ रखा है। जिसकी जितनी मुश्किल से शादी होती है, वह बेचारी उतनी ही बड़ी माँग भरती है। उसने बड़े अभिमान से मेरी तरफ देखा। फिर पति को देखा। उसकी नजर में ठसक और ताना है, जैसे अँगूठा दिखा रही है कि ले, मुझे तो यह मिल ही गया। मगर यह क्या? वह ठण्ड से काँप रही है और 'सी-सी' कर रही है। वसन्त में वासन्ती साड़ी को कँपकँपी छूट रही है।

यह कैसा वसन्त है जो शीत के डर से काँप रहा है? क्या कहा था विद्यापति ने....'सरस वसन्त समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे!' नहीं मेरे कवि, दक्षिण से मलय पवन नहीं बह रहा। यह उत्तर से बर्फ़ीली हवा आ रही है। हिमालय के उस पार से आकर इस बर्फ़ीली हवा ने हमारे वसन्त का गला दबा दिया है। हिमालय के पार बहुत-सा बर्फ बनाया जा रहा है जिसमें सारी मनुष्य जाति को मछली की तरह जमा कर रखा जायेगा। यह बड़ी भारी साजिश है बर्फ की साजिश! इसी बर्फ की हवा ने हमारे आते वसन्त को दबा रखा है। यों हमें विश्वास है कि वसन्त आयेगा। शेली ने कहा है, 'अगर शीत आ गयी है, तो क्या वसन्त बहुत पीछे होगा? वसन्त तो शीत के पीछे लगा हुआ ही आ रहा है। पर उसके पीछे गरमी भी तो लगी है। अभी उत्तर से शीत-लहर आ रही है तो फिर पश्चिम से लू भी तो चल सकती है। बर्फ और आग के बीच में हमारा वसन्त फँसा है। इधर शीत उसे दबा रही है और उधर से गरमी। और वसन्त सिकुड़ता जा रहा है।

मौसम की मेहरबानी पर भरोसा करेंगे, तो शीत से निपटते-निपटते लू तंग करने लगेगी। मौसम के इन्तजार से कुछ नहीं होगा। वसन्त अपने आप नहीं आता; उसे लाया जाता है। सहज आनेवाला तो पतझड़ होता है, वसन्त नहीं। अपने आप तो पत्ते झड़ते हैं। नये पत्ते तो वृक्ष का प्राण-रस पीकर पैदा होते हैं। वसन्त यों नहीं आता। शीत और गरमी के बीच से जो जितना वसन्त निकाल सके, निकाल लें। दो पाटों के बीच में फँसा है, देश का वसन्त। पाट और आगे खिसक रहे हैं। वसन्त को बचाना है तो ज़ोर लगाकर इन दोनों पाटों को पीछे ढकेलो - इधर शीत को, उधर गरमी को। तब बीच में से निकलेगा हमारा घायल वसन्त।

वर्षा हाइकु

डॉ. कुँअर बेचैन

आषाढ़ माह
उगी मन-मोर में
नृत्य की चाह

पहला मेह
भीतर तक भीगी
गोरी की देह

पहला मेह
या प्रिय के मन से
छलका स्नेह

अधीर
मेघ ने छुआ जब
नदी का नीर

देखे थे ख़्वाब
भर दिए मेघों ने
सूखे तालाब

भरे ताल
पास खड़े पेड़ भी
हैं खुशहाल

लिक्खे सर्वत्र
आसुओं की बूँदों से
पेड़ों ने पत्र

जलतरंग
जल बना, तर भी-
बना मृदंग

ये नन्ही नाव
काग़ज़ में बैठे हैं
बच्चों के भाव

पूरा आकाश
दे गया कृषकों को
जीने की आश

छतरी खुली
छूट रही हाथ से
ये चुलबुली

भीगी सड़क
फिसल मत जाना
ओ बेधड़क

चौपालों पर
गूँज उठे हैं ऊँचे
आल्हा के स्वर

इंद्रधनुष
बिखरा कर रंग
कितना खुश

पानी की प्यास
धरा हो या गगन
सबके पास

वापसी

डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

रामशरण सात वर्ष बाद वापस स्वदेश जाने वाला है। एक नया उत्साह उसके मन में है। अनेक वर्षों से वह प्रयासरत है कि स्वदेश वापस जाए परंतु कोई न कोई आवश्यक कार्य उसके परिवार में निकल आता और वह चाहकर भी न जा पाता। कभी गांव में पक्का घर बनाना होता, कभी गिरवी खेत महाजन से छुड़ाने होते तो कभी भाई-बहनों के स्कूलों की फीस देनी होती। वह बड़े भाई होने का फर्ज़ बखूबी निभाता रहा है। पांच भाई-बहनों में सबसे बड़ा है वह।

जब वह विदेश आया था तब उसने खेत गिरवी रखे थे। उसे अतीत की सभी बातें स्मरण हैं। वे भी दिन थे जब विदेश भेजने के लिए एजेन्ट ने उससे पूरे पांच लाख रूपए लिए थे।

जब पड़ोस में उसका हम-उम्र दिलीप सिंह विदेश जा सकता है, जो पांचवी जमात तक पढ़ा था, तो वह तो बी ए पास है और ट्रक चालक भी है फिर वह क्यों विदेश नहीं जा सकता। वह अक्सर तुकबन्दियां करता और विदेश जाने के पूर्व कहता,

"आसी भी जावांगे परदेश,
बनकर आवांगे अंग्रेज,
उठा के सोटी लाले नु मारां,
पैसे उसके मुख पे मारां
ऊंचा जो मकान बनावां,
गांव मे अपनी टोर बधावां"

उसके साथियों के साथ बहुत बुरा हुआ। उसके साथ गए 300 लोग जो नाव द्वारा इटली जा रहे थे, इटली के पास नाव डूबने से मारे गए थे। एक तो 200 लोगों को ढोने वाली नाव पर 300 लोगों के सवार होने पर वैसे ही असुरक्षा को आमंत्रण दे दिया गया था। जब नाव के नाविक ने नाव चलाने से मना किया तो लोगों ने अशांति उत्पन्न करना, शोर मचाना आरंभ कर दिया था। कहते हैं कोई भी नाव से उतरने को तैयार नहीं था। कैसा होता है यह जीवन को बेहतर बनाने के लिए विदेश जाने का सुख?

जिस दिन वह नाव दुर्घटना हुई उस दिन समुद्र में तेज हवाएं चलने लगी थीं। तेज हवाओं में नाव का संतुलन बिगड़ गया था। नाव डूब गई और उस पर सवार सभी मारे गए थे। उस नाव पर रामशरण सवार नहीं हुआ था क्योंकि उसकी भेंट एक ट्रांसपोर्ट मालिक से हो गई और उसके कहने पर रामशरण उसके साथ रूक गया था। रामशरण के घर वाले उसे दो महीने तक मरा समझते रहे जब तक उसका विदेश से पत्र नहीं आ गया था।

आज उसे इस बात की बहुत प्रसन्नता है कि उसके खेत मुक्त हो गए है। घर पक्का बन गया है। रामशरण को अपने वतन से बहुत प्रेम है। चाहे संगीत हो या कपड़े वह सदा स्वदेशी वस्तुओं को पसंद करता। पर दूसरों के लिए उसने विदेशी वस्तुएं खरीदी हैं। होली आने वाली है वह अपने देश जा रहा है। वह भारतीय ट्रेवेल एजेंसी से टिकट ख़रीदता है। उसका कहना है कि विदेश में यदि आदमी के पास काम हो और वह अनपढ़ भी हो तो उसका काम चल जाएगा। मंदिर-गुरूद्वारे में अपनी भाषा। दूतावास में अपनी भाषा। भारतीयों की अपनी ट्रेवेल एजेंसियां हैं, उनके अपने रेस्टोरेन्ट हैं। भारतीय सामान अनेक प्रवासी दुकानों पर मिलता है। रही बात विदेशी भाषा की वह तो जहां आदमी रहता है सीख जाता है। उच्चारण सही न भी हुआ तो कोई बात नही यदि भाषा अच्छी तरह सीख भी ली तो कौन उसे भाषा का प्रोफेसर बना देगा।

रामशरण अपनी कार चला रहा है। पुरानी फिल्म का गीत बज रहा हैं, "ऐ वतन ऐ वतन मुझको मेरी कसम, तेरी राहों में जान तक लुटा जाएंगे।" तभी वह कार रोकता है।

"नमस्कार हरदेव सिंह!"

"नमस्कार रामसरन! सुना है कि तू इंडिया जा रहा है।"

"हां, मैं भारत जा रहा हूं।"

"यार जब वापस आना तब मेरी मां को साथ लेते आना। दो बरस बाद उनका वीजा मिल गया है। तूसी अपनी भाषा-बोली भी बोलते हो तो मां नू बहुत आराम हो जाएगा।"

"यह तो कोई बात ही नहीं, हरदेव सिंह! मेरी वापसी तारीख मुताबिक ही मां की टिकट कटाओ। मैं आराम से उन्हें लेता आऊंगा। उन्हें चार-पांच घंटे पहले हवाई अड्डे पर बुला लेना। यह तो बताओ हरदेव सिंहजी, तेरा मुंडा जो पोलैण्ड में पढ़ता है उसका क्या हाल है? वह तो सारा समय इस देश के बाहर ही रहता है।"

"मत पूछो यार मेरा दीवाला निकला जा रहा है। लोगों के कहने पर अपने पुत्तर को डाक्टरी में दाखिला तो दिला दिया। वह हर महीने कुछ न कुछ मांग किया करता है।" कहकर हरदेव सिंह ने लंबी सांस भरी और अपनी बात जारी रखी, "मैंने अपने मुंड्डे से कई बार कहा कि तुम सरकारी लोन उधार ले लो मेरा पिंड छोड़ो पर वह कहता है कि उसने डाक्टरी मे दाखिला मेरी इच्छानुसार लिया था अतः उसका खर्चा भी मुझे उठाना होगा।"

"यह आपने अच्छा किया। मुंडा डाक्टर तो कहलाएगा।"

"इससे क्या फ़रक पड़ता है। मुझे तो चूना लग रहा है। वैसे साथ रहता। अपनी मात्र भाषा सीखता। हमारे काम में हाथ बटाता।"

"कोई बात नहीं है। सब ठीक हो जाएगा। कोई कुड़ी देखी अपने पुत्तर वास्ते?" गहरी सांस लेते हुए हरदेव बोला,

"मत पूछो रामसरण, मैं क्या करूं? एक विलाइती कुड़ी उसके साथ रहती है। मुझे पहले पता होता तो मैं उसे कभी भी बाहर पढ़ने न भेजता।"

"की फ़रक पैंदा है? क्या फरक पड़ता है?) बुढ़ापे का क्या भरोसा। जब बच्चे भी अपने कहने मे नहीं हैं। भला हो यहां की सरकार का जिसने यहां वृद्धाश्रम बनाए हैं, जहां हम लोगों को आसानी से जगह मिल जाएगी।" रामशरण ने अचानक हंसते हुए आगे कहा, "तब आसी बिना दांतों के छड़ी लेकर साथ घूमेंगे और जीवन की कीमती घड़ियों को याद करेंगे।"

"तुम ठीक कहते हो रामशरण। हमारा भी एक दिन वही हाल होगा जो यहां के बुजुर्गों का होता है। अकेले, बिलकुल अकेले। अपनों से अलग।"

"तूसी पंजाब के शेर हो। चिंता दी कोई लोड, आवश्यकता नहीं है।"

समय को बीतते देर नहीं लगती। आज स्वदेश वापसी के लिए एअरपोर्ट पर आ गया। उसका परिवार उसे विदाई देने आया है। सामान और टिकट की जांच कराकर वह सुरक्षा जांच की तरफ़ आगे बढ रहा है। वह आवश्यकता से अधिक सामान लेकर जा रहा है। सभी को उपहार देना है। रामशरण की पत्नी कहती, "तुम्हें 20 ग्राम का कोई एक पत्र भी नहीं लिखता, और तुम उन सभी के लिए कुछ न कुछ उपहार जरूर ले जाते हो। वे जब भी फ़ोन करते हैं तो केवल अपनी मांग को बताने के लिए। आपके जन्मदिन पर कभी फ़ोन किया। होली, बैसाखी किसी ने कोई कार्ड भेजा?"

"एक ख़त लिख देने से क्या होता है भागवान! हम अपना फ़र्ज़ निभा रहे हैं। केवल बदले से ही हर कुछ नहीं करना चाहिए।"

रामशरण ने अपनी पत्नी को सांत्वना देते हुए आगे कहा, "जब ईश्वर ने हमें दिया है तभी देते हैं। अगर हमारे पास न होता तो कहां से देते? मेरा मानना है कि दूसरों को खिलाने से कभी नहीं घटता।"

अपने पति के इस दर्शन से कतई सहमत नहीं थी उसकी पत्नी। उसकी पत्नी ने उसे स्मरण कराया, "अम्मा ने अपना घर-द्वार दादा की तेरहवीं में दान कर दिया था। फिर आप लोग कंगाल क्यों हो गए? आपके एक लेखक मित्र कह रहे थे कि जो पैसे खर्च करने में बेवकूफ़ी करता है वह जीवन में भी

बेवकूफ़ी करता है।" अपनी पत्नी की बात सुनकर रामशरण हंसता है,"तूसी इतनी बड़ी-बड़ी गल्लां, बाते कैसे कर रही हो?" उसकी पत्नी चुप न रह सकी, "समय और मुसीबत सब सिखा देतें हैं। हाथ सभांल कर खर्च करना। ज़रूरत पड़ने पर सभी अपने फिर पराए न हो जाएं।"

"तूसी फ़िकर न करो। कोई अपना पराया नहीं होने लगा है।" रामशरण ने कहा।

"तूसी अपना ध्यान रखना।"

"फ़िकर न करो। अपने देश में क्या ध्यान रखना और क्या ध्यान नहीं रखना। चलो ठीक है।"

"जाकर फ़ोन करना।"

"ज़रूर फ़ोन करूंगा।" रामशरण हाथ में दो थैले, पीठ में एक थैला लिए हुए सुरक्षा जांच के लिए हाथ हिलाता हुआ ओझल हो गया।

जहाज़ में अपना अधिक सामान किसी तरह जमाकर अपनी सीट पर बैठता हुआ वह गहरी सांस भरता है। एक परिचारिका आपातकाल में क्या करना है इसकी सूचना देने लगती है। कुछ देर पश्चात जहाज़ हवाई पट्टी पर दौड़ता हुआ झटके के साथ ऊपर उठता हुआ उड़ने लगता है। वह जहाज़ की खिड़की के पास बैठा नीचे देखता है। धीरे-धीरे पेड़-पौधे, कारें छोटी होती हुई चींटिय सी दिखती हुई ओझल हो जाती हैं।

राम शरण पुरानी स्मृतियों में डूब जाता है, जब रामशरण तुकबंदियां करता। उसके दोस्त वाह-वाह कहकर उसका हौसला बढ़ाते। वह अपना दिल बहलाने के लिए कविताएं लिखता। विदेश में उसके साथ एक ओर केवल कविता थी दूसरी ओर स्वदेश की स्मृतियां।

"आए इतनी दूर विदेश,
अच्छा लगता अपना देश। पत्रों कहना यह संदेश
सूना लगता है परदेश।
अपने घर के कटें क्लेश
धनी बनेगा अपना देश
नहीं चाकरी यहां करेंगे जिएं मरेंगे अपने देश।"

एक समय था जब उसके पास पैसे न होते और पड़ोसी बनिए लाला जोगीराम से वह उधार मांगता। लाला को खुश करने के लिए वह कविता में बातचीत करता था -

"लाला जी दे दो उधार,
मुझको मिली न पगार"
लाला भी अपनी तुकबंदी सुनाता,
"आज नकद कल उधार,
क्यों करूं कंगालों से प्यार"

रामशरण कहता - "लाला एक दिन मैं भी पैसे वाला आदमी बनूंगा तब सारा उधार चुकता कर दूंगा।"

"जिसकी बनी उसी से बनी, वरना लाला की ठनी। बड़े आदमी भी तो तुम मेरे उधार से ही बनोगे।"

"छोड़ो भी लाला। आज का रंक कल राजा बनेगा।"

"फिर तुमको उधार को भी मना नहीं करूंगा, रामशरण।"

बादलों के बीच गड़गड़ाहट करता हुआ जहाज़ उड़ता चला जाता है। जैसे रूई के फाहे के बीच में उड़ रहे हैं। एक परिचारिका रामशरण को जगाती है कहती है कि अब दिल्ली आने वाला है और वह सीट-पेटी बांध ले। आठ घंटे की यात्रा के बाद हवाई जहाज़ घोषणा करता है कि हम कुछ देर में नई दिल्ली हवाई अड्डे पर पहुंचने वाले हैं। नई दिल्ली में तापमान 30 डिग्री सेंटीग्रेट है। उसे खिड़की से अपने देश की भूमि देखकर अपार प्रसन्नता हो रही है। उसके मन मे एक नई उमंग है। उसकी आंखों में एक नई चमक, एक नया उत्साह है अपनी स्वदेश वापसी को लेकर।

हवाई अड्डे पर आगमन द्वार से निकलता है। कोई किसी के स्वागत के लिए हाथों में फूल लिए हुए है। कोई आगंतुकों के नाम लिखी तख्ती लिए है। कोई खाली हाथ है तो कोई हाथों में मालाएं लिए हुए है। रामशरण को लेने कोई नहीं आया है। रामशरण का स्वागत तो उसके गांव में होगा जहां उसके लोग हैं। रामशरण कहता अपने देश में क्या स्वागत। सभी तो अपने हैं। वह टैक्सी पर बैठता है। चालक से मौसम का हाल लेते हुए गांव के लिए रवाना हो गया है कितना आनंद मिलता है स्वदेश वापसी पर यह वही जान सकता है जो अपने गांव, नगर और देश से दूर बसा हो।

न देखो पीर उर की....

डॉ. शेरजंग गर्ग

न देखो पीर उर की, पर अधर की प्यास तो देखो
निहारो मत दिये को, पर शलभ की लाश तो देखो

न कहना फिर तड़प का कुछ असर होता नहीं जग में,
धरा के ताप पर रोता हुआ आकाश तो देखो

सही है, रिक्त हूँ मैं ज़िन्दगी की मुस्कराहट से,
व्यथाओं ने दिया है जो मधुर उल्लास तो देखो

इधर उपवन हुआ वीरान है, यह मानता हूँ मैं
उधर अंगड़ाइयाँ लेता हुआ मधुमास तो देखो

नहीं मालूम तुमको खुद तुम्हारे ईश की सूरत
मनुज की भावना का यह सबल उपहास तो देखो

रुपहली रात में माना व्यथित आँखें बरसती हैं
घनी काली घटाओं में तड़ित का हास तो देखो

न मापो ज़िन्दगी में दर्द की गहराइयों को तुम
हृदय के अंक में पलता हुआ विश्वास तो देखो।

आवश्यक है इच्छाओं के जंजाल से मुक्ति

डॉ. पूर्ण सिंह डबास

संचार क्रांति के इस युग में 'डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू' (WWW) अर्थात् 'World Wide Web' का बहुत शोर है. इसका अर्थ है पूरी धरती और उसके आकाश में व्याप्त इलैक्ट्रानिकी ताना-बाना या संजाल जिसके माध्यम से पूरे विश्व में बातचीत या संचार संभव है. बाहरी जगत् में फैले इस ताने-बाने से भी जटिल इच्छाओं का एक संजाल हमारे भीतर, मन में भी मौजूद है. ये इच्छाएँ मनुष्य में ही नहीं प्राणी-मात्र में व्याप्त हैं जो जन्मजात हैं, सहज हैं, अर्थात् साथ ही जन्म लेती हैं और स्वाभाविक हैं, अर्थात् बिना कोशिश किए स्वयं ही उत्पन्न हो जाती हैं. छोटे-बड़े सब का जीवन इच्छाओं से प्रेरित एवं परिचालित होता है. यदि इच्छाएँ न होतीं तो संसार में कुछ भी न होता. यह सारा विकास, जो हम अपने चारों ओर देखते हैं, सारा ज्ञान-विज्ञान, समग्र राग-द्वेष इन सबके पीछे किसी न किसी रूप में इच्छाएँ मौजूद हैं.

यदि गहराई से सोचें तो हमारी इच्छाओं का जन्म हमारी मूलभूत आवश्यकताओं या अनिवार्यताओं के परिणाम-स्वरूप होता है. उदाहरण के लिए भूख-प्यास हमारी ऐसी ही अनिवार्यताएँ हैं. नवजात शिशु को भूख लगती है तो वह रोने लगता है, प्यास लगती है तो रोने लगता है, दर्द होता है तो रोने लगता है. उसकी इच्छा होती है कि भूख, प्यास और दर्द शांत हो. वह इन्हें शांत करने के लिए कोई प्रयत्न या कर्म नहीं कर सकता, यह रोना ही उसका प्रयत्न है या कर्म है. जब थोड़ा बड़ा होता है तो पानी-भोजन स्वयं उठा लेता है और युवा होने पर इस भूख-प्यास को शांत करने के लिए बड़े कर्म करता है. खेती करता है, नौकरी करता है, व्यापार करता है या उद्योग-धंधे आदि लगाता है और अपनी भूख-प्यास, आवास, वस्त्र आदि की अनिवार्यताओं का समाधान कर लेता है. यहाँ तक तो स्थिति सामान्य रहती है लेकिन इससे आगे जब ये भूख और अनिवार्य-आवश्यकताएँ शरीर की भूख और आवश्यकताओं से आगे बढ़ कर मन की भूख और आवश्यकताएँ बन जाती हैं तो इनके विस्तार की सीमा नहीं रहती. जब इनकी सीमाएँ नहीं रहतीं तो इन्हें प्राप्त करने की इच्छाएँ भला कैसे सीमित रह सकती हैं. पेट गौण बन जाता है, अधिक से अधिक प्राप्त करने की होड़ लग जाती है और मनुष्य पास-पडौस में, रिश्तेदारों में और फिर देश-दुनिया में सर्वोपरि बन जाने की होड़ में जुट जाता है. यह होड़ ऐसी दौड़ या स्पर्धा बन जाती है जिसकी अंतिम सीमा या 'फिनिशिंग लाइन' नहीं होती. और, यह सच है कि कोई भी धावक ऐसी दौड़ नहीं दौड़ सकता है जिसकी समाप्ति-रेखा न हो. यदि वह दौड़ता है तो दौड़ की समाप्ति-रेखा के अभाव में दौड़ने वाले की समाप्ति निश्चित है. परिणाम होता है कि जो इच्छाएँ सुख दे सकती थीं, मन को संतुष्ट कर सकती थीं, वे अपने इस असीम विस्तार के कारण या सीमा लाँघ जाने के कारण सुख के स्थान पर दुख का कारण बन जाती हैं.

इसलिए हमारे ऋषियों ने रास्ता सुझाया कि इच्छाओं पर लगाम लगाओ, इन्हें पालतू बनाओ, सधाओ, ताकि ये तुम्हारे बस में रहें. इनके दास नहीं स्वामी बनो. किसी की भी हो, दासता, परवशता या पराधीनता कभी सुखद नहीं होती. इसलिए संत तुलसीदास ने कहा था - 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं.' अर्थात् जीते-जागते की तो बात ही छोड़ो, पराधीन को तो सपने में भी सुख नसीब नहीं होता. जैसे हमने पशुओं को लगाम डाल कर, खूँटे से बाँध कर साध लिया, वश में कर लिया, पालतू बना लिया और उनसे सुख ले लिया इसी तरह इच्छाओं को भी वश में करके उनसे सुख लो. इनको भी खूँटे से बाँधो. जहाँ ये इच्छाएँ जन्मती और पनपती हैं उस मन को और इंद्रियों को नियंत्रण में करो. जिस प्रकार हम बेलगाम, उच्छृंखल तथा बेकाबू पशु को काबू में करके या सिधाकर उसका सुखद उपयोग कर लेते हैं, उसी प्रकार इनका भी उपयोग करो. मनु ने धर्म के जो निम्नांकित दस लक्षण बताए हैं -

'धृति, क्षमा, दम: अस्तेयं, शौचम्, इंद्रियनिग्रह,

धी: विद्या, सत्यं अक्रोधो, दशकम् धर्म लक्षणम्.'

(अर्थात् - धृति, क्षमा, मन पर काबू, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों को वश में करना, बुद्धि, विद्या, सत्य बोलना तथा क्रोध न करना ये धर्म के दस लक्षण हैं.) इनमें 'दम' तथा 'इंद्रिय निग्रह' इसी ओर संकेत करते हैं. दम का अर्थ है दमन अर्थात् दबाना (मारना नहीं), काबू या नियंत्रण में करना. यह काबू करना मन के लिए है. मन काबू में हो जाए तो सब सिद्ध हो जाता है. 'मन के साधे सब सधै' की कहावत में भी किसी का यही अनुभव बोलता है. 'इंद्रिय निग्रह' का अर्थ है इन्द्रियों को विशेष रूप से थाम कर या पकड़ कर रखना. 'निग्रह' कुछ वैसा ही शब्द है जैसा पशु का 'प्रग्रह' या 'पगहा' होता है अर्थात् पशु के गले की वह मोटी रस्सी जिससे पशु को खूँटे से बाँध कर उसकी गतिविधियों को सीमित कर देते हैं ताकि वह बेकार में भटकता, धमा-चौकड़ी करता, तोड़-भोड़ करता न घूमे और आवश्यकता पड़ने पर खोल कर उसका उपयोग किया जा सके. इसी प्रकार इन्द्रियों का उपयोग भी मनुष्य अपने हित साधन में करे और अहित करने वाली उनकी धमा-चौकड़ियों को रोके.

लेकिन इंद्रियों पर और मन पर काबू करना कोई सरल काम नहीं है. सारा धार्मिक चिन्तन इन्हें काबू करने के उपायों के इर्द-गिर्द घूमता है. इन्हें काबू करने में जहाँ हमारी एषणाएँ, अहंकार, राग-द्वेष तथा लोभ-मोहादि बाधक हैं, वहीं हमारी आधुनिक सामाजिक व्यवस्था और अर्थ-तंत्र भी बाधक हैं. अर्थ-शास्त्री कहेगा इच्छाएँ सीमित करने से उत्पादन कम हो जाएगा, विकास रुक जाएगा, राष्ट्रीय आय घट जाएगी, देश पिछड़ जाएगा आदि. अर्थ-तन्त्र इस बात को नहीं सोचता कि जिसके लिए यह उत्पादन हो रहा है, विकास हो रहा है, उस मनुष्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है. वह बाहरी चमक-दमक, घर में भरे उपकरणों या अन्य उत्पादनों में ही व्यक्ति का सुख-चैन खोज लेता है. इन उत्पादनों के लिए मारा-मारी, व्यापारिक स्पर्धा तथा आर्थिक रूप से एक-दूसरे से आगे निकल जाने की अंधी दौड़ मनुष्य को कितना परेशान, छल-कपट से परिपूर्ण और साधन जुट जाने के बाद भी कितना विकल कर देते हैं, इसकी तरफ़ अर्थ-तंत्र का ध्यान ही नहीं जाता. यह व्यापार तंत्र अत्यंत मोहक और अनेक बार कामुक विज्ञापनों के द्वारा मनुष्य में आवश्यकता या इच्छा न होने पर अपने उत्पादनों की खपत के लिए आवश्यकता और इच्छा पैदा करता है. सारा व्यापार-तंत्र इन इच्छाओं को बढ़ा कर ही पनप रहा है. उसका उद्देश्य माल बेचना है, इससे आगे की सोच से उसका कोई सम्बन्ध नहीं.

धर्म-शास्त्र व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी होने के बाद की बात भी सोचता है. इतना ही नहीं, वह मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी न होने की स्थिति में भी जीवन जीने की कला सिखाता है जो उसे कष्टों को झेलने तथा उनसे निकलने की क्षमता जुटाती है. धर्म-शास्त्र कहता है कि जिस प्रकार जीवन में साधन-हीनता कष्टदायी है उसी प्रकार अति-साधन-संपन्नता भी दुखदायी है. यदि ऐसा न होता तो बड़े-बड़े सम्पन्न एवं समृद्ध व्यक्तियों को हृदयाघात न होता और ना ही वे नींद की गोलियाँ लेकर सोते. अत्यधिक धन, उसके छिन जाने की आशंका, परिणामत: उसकी रक्षा के उपाय, उसके निवेश और फिर से निवेश करने का चक्कर, आयकर अथवा अन्य संबद्ध अधिकारियों का भय आदि उसे बेचैन एवं तनाव-ग्रस्त बनाए रखते हैं.

धर्म-दर्शन आवश्यकता पूरी होने पर धन के उपार्जन का विरोध नहीं करता, लेकिन ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति को अपनी दृष्टि बदल लेने की सीख अवश्य देता है. उसका कहना है कि एक सीमा के बाद अपने लिए नहीं, समाज और राष्ट्र के लिए कमाओ. अपनी सामान्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद, जितने धन का आप उपभोग कर सकते हैं, उसके बाद जो कुछ बचता है या जो कमाते हो वह समाज और राष्ट्र को अर्पित कर दो. ऐसी स्थिति में आपका उद्देश्य उदात्त हो जाएगा. तनाव की जगह प्रसन्नता प्राप्त होगी, संतोष उपजेगा और सूखता-मुरझाता जीवन लहलहाने लगेगा. उदाहरण के लिए संसार में

कितने ही ऐसे उद्योगपति हैं जिनके पास इतना अपार धन है कि वे व्यक्तिगत और पारिवारिक स्तर पर उसका उपभोग नहीं कर सकते. प्रश्न पैदा होता है, फिर वे उस धन का क्या करें? वे देश-विदेश में दूसरे उद्योगों या कंपनियों को खरीदते हैं और विश्व का सबसे बड़ा उद्योगपति बनने का प्रयत्न करते हैं. अगर कहीं इस प्रयत्न में असफल हो जाते हैं या उनकी किसी कम्पनी में घाटा हो जाता है तो उन्हें तनाव होता है, दुख होता है. उनके पास तो अपार धन था, उस थोड़े से घाटे से या विस्तार रुक जाने से उनके रहन-सहन में तो कोई अन्तर आएगा नहीं. फिर दुख और तनाव क्यों हुआ? सिर्फ़ इसलिए कि उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई. संसार का या अपने उद्योग-जगत का नम्बर एक बनने का स्वप्न साकार नहीं हुआ. स्पष्ट है यह दुख आर्थिक कारण से नहीं असीमित इच्छाओं की पूर्ति न होने से हुआ. इसलिए धर्म-शास्त्र कहता है उस अतिरिक्त धन को मानव-मात्र के कल्याण के लिए अर्पित कर दो. आपका उससे निजी सम्बन्ध टूट जाएगा, वह धन स्वार्थ-मुक्त हो जाएगा. किसी आत्मीय सगे या सम्बंधी की मृत्यु पर दुख होता है, किसी दूसरे स्थान के असम्बद्ध एवं अनजाने व्यक्ति के मरण पर हम दुखी नहीं होते. इसी प्रकार जब आपके कर्म स्वार्थ से मुक्त होकर समाज को समर्पित हो जाएँगे तो वे सुख का कारण बन जाएँगे.

आप भी आवश्यकता से अधिक धन-संपत्ति को स्वेच्छा से परहित में लगा दें. आपके मन को उस ख़ुशी से ज़्यादा ख़ुशी मिलेगी जितनी उस धन को अपने क़ब्ज़े में रखने पर मिल रही थी. आपको अपने जीवन की सार्थकता दिखाई देने लगेगी. संसार में अनेक लोग ऐसा करते हैं. विश्व के सर्वाधिक धनी व्यक्तियों में से एक वारेन बफे (Warren Buffet) ने अरबों डॉलर अपने मित्र और कंप्यूटर जगत् के बेताज बादशाह अमरीकी उद्योगपति बिल गेट्स की परोपकारी संस्था 'बिल एंड मिलिंडा गेट्स फाउंडेशन' को दे दिए थे. उसने इस अहं भाव को नहीं पाला कि मैं स्वयं अपनी संस्था बनाऊँगा और तब मानव-सेवा करूँगा.

अगर अकूत धन की दिशा बदल कर आप उसे जनहित की तरफ़ नहीं मोड़ेंगे और उससे बड़ी और बड़ी इच्छाओं की पूर्ति करने में ही जुटे रहेंगे तो निश्चित जानिए कि इच्छाएँ कभी समाप्त नहीं होंगी. जीवन के अंतिम क्षणों में आपको अपने ही निर्णयों पर, अपनी ही वृत्तियों पर पछतावा होगा और लगेगा कि इतने सारे साधन होने के बावजूद जीवन व्यर्थ गँवा दिया. इच्छाएँ पूर्ति की इस असम्भवता को विचारकों ने बहुत पहले ही जान लिया था. आशाएँ हमारा पीछा कभी नहीं छोड़तीं, इसी सत्य का उद्घाटन करते हुए 'मोहमुद्गर' नामक ग्रंथ में कहा गया है -

अङ्ग गलितं पलितं मुण्डम्, दन्तविहीनं जातं तुण्डम्।
करधृत कंपित शोभित दण्डं, तदपि न मुञ्चति आशा पिण्डम्।

अर्थात् - शरीर जीर्ण हो जाता है, बाल पक जाते हैं, मुँह में दाँत नहीं रहते, सहारे के लिए हाथ में धारण की हुई लाठी काँपने लगती है फिर भी अपेक्षाएँ-इच्छाएँ इस शरीर को नहीं छोड़तीं. संदेश स्पष्ट है, बढ़ती ऊर्जा के साथ सांसारिक इच्छाएँ पूरी हों और घटती ऊर्जा के साथ उनसे विरक्ति होती जाए. यही सहज मार्ग है. जब आप संसार से जाएँ तो मन में कोई इच्छा न हो, मात्र उस प्रभु का धन्यवाद हो.

भर्तृहरि ने 'वैराग्य शतक' में इसी भाव को और भी स्पष्ट शब्दों में कहा है -

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा,
तपो न तप्तं वयमेव तप्ता:, कालो न यात: वयमेव यात:।

अर्थात् - बहुत भोगने के बाद भी भोग तो नहीं भोगे जाते बल्कि हम ही भोग लिए जाते हैं. बहुत पूरी करने के बाद भी तृष्णाएँ तो जीर्ण नहीं होतीं बल्कि हम ही जीर्ण हो जाते हैं. तप नहीं तपे जाते बल्कि हम ही तप जाते हैं, काल तो नहीं बीतता बल्कि हम ही बीत जाते हैं.

इसलिए इच्छाओं के जाल से निकलने की कोशिश करो. काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि इच्छाओं के ही रूपांतरण हैं. इच्छाओं से मुक्त होना ही बंधनों से मुक्त होना है. जो बंधनों में बँधा है वह मृत्यु के

समय दुखी होगा. संसार को शांति से नहीं छोड़ सकेगा. कल्पना कीजिए आपके हाथ-पाँव बँधे हैं और कोई आपका हाथ पकड़ कर कहता है, 'चलिए, मेरे साथ जल्दी चलिए', भला बंधनों को खोले बिना कैसे चल सकेंगे. खींचने वाला बलवान है, चलना तो पड़ेगा ही. चल पाओगे नहीं, घिसटोगे, हाथ-पाँव टूटेंगे. दुर्गति होगी. इसलिए बंधनों को पैदा मत करो. पैदा हो गए हों तो उनसे मुक्त हो जाओ. ले जाने वाला जब हाथ पकड़कर चलने को कहे तो फटाफट भागे चले जाओ. कोई कष्ट नहीं होगा. लेकिन इसके लिए बहुत पहले से तैयारी की जरूरत है.

याद रखें दुनिया में बहुत-सी चीजों के होने का समय बड़ा निश्चित है. धरती अपनी धुरी के गिर्द कितनी देर में चक्कर लगाती है, यह निश्चित है. सफ़र करते समय आपने देखा होगा ट्रेन या हवाई-जहाज़ के चलने का समय निश्चित है. टाइम-टेबल छपे हुए हैं. लेकिन जिंदगी कब समाप्त होगी इस बारे में कुछ भी निश्चित नहीं है. कहाँ समाप्त होगी यह भी निश्चित नहीं है. कबीर ने कहा था -

कबिरा कहा गरबियौ, काल गहे कर केस।
नां जाणौ कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस।।

जीवन की गाड़ी कभी भी छूट सकती है. इसलिए जाने की पूरी तैयारी रखें. तैयारी नहीं होगी और मोह, ममत्व तथा एषणाओं के जाल में फँसे रहोगे तो मामला गड़बड़ हो जाएगा. हड़बड़ी में भागना पड़ेगा. बंधन रोकेंगे और ले जाने वाला रुकेगा नहीं. दुख होगा. चिल्लाओगे, हाय! मेरा यह रह गया, वह रह गया, अमुक काम अधूरा रह गया. मोहलत माँगेंगे, मगर मिलेगी नहीं. भय लगेगा. स्कूल जाने से वही बालक डरता है जिसने 'होमवर्क' नहीं किया हो. आयकर अधिकारी को देख कर वही व्यापारी भयभीत होता है जिसके बही-खातों में गड़बड़ हो, जिसने टैक्स न चुकाया हो, और मौत को सामने देख कर वही रोता-पीटता है जिसने चलने की पूरी तैयारी नहीं की हो.

दौड़ रहे हैं सब
अटकलों पर दिशाभ्रांत
पर दूसरों के हारने पर
आती है मुस्कान
गोया,
किसी की हार,
अपनी जीत का बन जाता है पैगाम
कब, कहाँ,
अपना हो ऐसा ही हाल,
नहीं जानता यह अनजान
यह कैसी दौड़ है?

बहुतों को तो यह भी नहीं पता है
कि,
दौड़ना कहाँ तक है!!
बस,
दौड़ ही दौड़ का ध्येय है;
अदृश्य मंजिल की ओर
दम फुलाये दौड़ता ही जाता है
यह कैसी दौड़ है?

यह कैसी दौड़ है?
यह अंधी दौड़ है
बिना रेफ़री की दौड़ है.

श्रीसीताराम केलिकौमुदी : एक गवेषणा

डॉ. गीता देवी मिश्रा

सीतारामजू की गोपनीय सुमधुर लीला,
भाव की समाधि निज नैननि निहार्यो है,
जगद्गुरु रामानंदाचार्य रामभद्राचार्य,
'गिरिधर' कवि तिन्हें काव्य में उचार्यो है
सीताराम केलि कौमुदी सुग्रंथ नाम जाको,
तीन किरणनि माहिं सरस सँवार्यो है,
ताको गीताहु ने कुमुदिनी नाम टीका करि,
राघव की प्रेरणा ते सुभग सिंगार्यो है

इतिहासकार मनीषियों ने हिन्दी साहित्य के काल-खण्ड को चार भागों में विभक्त किया है. इन्हें आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल के नाम से जाना जाता है. आदिकाल को वीरगाथा काल भी कहते है. यह काल रासो प्रधान श्रृँगार रस तथा वीर रस की संधि से युक्त तत्कालीन राजवंशों की विलासिता और वीरता के वर्णन में ही पर्यवसन हो जाता है. सौभाग्य और संयोग से आदिकाल में भी पृथ्वीराज चौहान के राजकवि कविचन्द्र (चन्द्र वरदायी) द्वारा रचित भगवान् श्रीराम के विधाय में लिखा हुआ सेतुबन्ध नाम महाकाव्य विद्वानों के मध्य बहुश: चर्चित हुआ है, इसके पश्चात् भक्तिकाल के आते ही हिन्दी भाषा के भाग्य में स्वर्णिम प्रभात आया. इसी काल में हिन्दी साहित्याकाश में कविकुल चूडामणि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा प्रणीत 'श्रीरामचरितमानस' महाकाव्य-रूप सूर्योदय हुआ जिसके लिए कहा जा सकता है - 'न भूतो न भविष्यति'. इस महाकाव्य ने अपनी अभूतपूर्व वर्णना के बल पर एक ऐसी ऊँचाई प्राप्त कर ली जिसकी छाया भी छूने में विश्व की कोई कृति समर्थ नहीं हो पायी. इसी कालखण्ड में प्रादुर्भूत हुये कबीरदास, सूरदास, अब्दुल रहीम खानखाना, मीराबाई, अष्टछाप के कवि पुंगव जैसे अनेक भक्त कवियों ने अपनी सिद्ध, प्रसिद्ध कृतियों से हिन्दी भाषा को एक समृद्ध साहित्यिक भाषा का गौरव प्रदान कर दिया.

इसके पश्चात् लगभग सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध से प्रारंभ हुए रीतिकाल ने हिन्दी भाषा को पीछे मोड़ कर बृहत्त्रयी तथा लघुत्रयी के प्रणेता संस्कृत कवियों की श्रृँगार रस प्रधान भोगवादी परंपरा का अनुकरण करने को विवश कर दिया और इस काल में जन्में घनानंद पद्माकर, भूषण, देव जैसे कवियों ने हिन्दी कविता को भाव प्रधान अल्प और कला प्रधान बहुल कर दिया. इस काल में कल्पना प्रधान वर्णना होने के कारण अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ. इसमें यमक, श्लेष, अनुप्रास, उपमा, अस्प्रतुत, प्रशंसा आदि अलंकार छाये रहे. परन्तु इसे दैवयोग ही कहा जाये कि इस रीतिकाल परंपरा में कविता केवल राजवंशियों को रिझाने का माध्यम ही बन कर रह गई. यद्यपि इस परम्परा का श्रीगणेश सोलहवीं शताब्दी में ही केशवदास ने कर दिया था. सौभाग्य से विट्ठलनाथ गोस्वामी जी से प्रभावित हुए मियाँ भक्तप्रवर रसखान ने रीतिकालीन परंपरा को भक्ति की ओर मोड़ने का एक श्लाघनीय प्रयास किया और लगभग ढाई सौ कवित्त एवं सवैया छंदों में रसखान ने भगवान् श्रीकृष्ण की बाल, किशोर लीला झाँकियों का बहुत सुन्दर और सरस वर्णन प्रस्तुत किया. इसे एक विडम्बना ही कहना चाहिए कि रीतिकाल से लेकर अद्यावधि हिन्दी साहित्य में भगवान् श्रीराम के विषय में रसखान के जैसी भाव-प्रधान अलंकारों से सुसज्जित चमत्कारपूर्ण कवित्त-सवैया से युक्त सुंदर रचना नहीं उपलब्ध हो रही थी. भावुक तथा साहित्यिक लोग रसखान की ही कतिपय

चमत्कार-युक्त भक्ति रचना गा-गाकर अपनी पिपासा बुझते रहे. भगवान् श्रीसीतारामजी की कृपा ने श्रीराम साहित्य में इस न्यूनता की पूर्ति के लिए तथा हिन्दी साहित्य में एक नयी क्रांति प्रस्तुत करने के लिए विगत मार्गशीष शुक्ल पूर्णिमा को जगतगुरु रामानंदाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी को प्रेरित और प्रोत्साहित कर दिया और इन्होंने अपनी भाव-समाधि में उपस्थित हुई प्रभु श्रीसीतारामजी की अति, निगूढ़, मधुर और सरस लीलाओं को भीतर की आँखों से जैसे-जैसे निकाला, वैसे-वैसे अंतरंग-तरंगों में अत्यंत ललित भक्तिरसपूर्ण कवित्त, घनाक्षरी, द्रुमिल, मत्तगयंद तथा छंदों में, सरस रचना में प्रस्तुत करके सीताराम केलिकौमुदी नामक सुंदर मधुर कविता मुक्ताओं का यह ग्रंथ ही प्रणीत कर दिया.

'सीताराम केलिकौमुदी' में महाकवि ने तीन किरणों की संरचना की है. प्रत्येक किरण में समान रूप से १०९ छंद हैं, अर्थात् इस ग्रंथ में पूरे छंदों की संख्या ३२७ है. यह काव्य छ: छंद विधाओं में लिखा गया है - कवित्त, घनाक्षरी, द्रुमिल, मत्तगयंद, अमात्रिक तथा गीत. इस काव्य में भक्तिरस में स्वीकृत वत्सलरस तथा मधुर-रस का वर्णन हुआ है. चूँकि गिरिधर कवि संस्कृत और हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान, भावुक तथा भगवान् श्रीसीतारामजी के अनन्य भक्त भी हैं, इसीलिए उनकी कविताओं में पूर्णरूप से रस, मर्यादा और अलंकार विधा का सम्यक् निर्वहण हुआ है. यद्यपि महाकवि ने अपनी कविता में अलंकारों को हठपूर्वक ठूँसने का प्रयत्न नहीं किया है परंतु वे सभी श्रीसीतारामजी की कृपा से बिना बुलाए आये हुए संभ्रांत अतिथि की भाँति इस काव्य में अलौकिक चमत्कार प्रस्तुत करते हुए दिखते हैं. महाकवि को अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक जैसे अलंकार बहुत प्रिय हैं. वे सब इस राम काव्य रत्न में बहुत ही सुंदर रूप में प्रस्तुत हुए हैं. उदाहरणार्थ कतिपय छंदो की झाँकी देखिए, जैसे -

कौसिला कौशिला शील निवाजन राजन राजन नैन निहारी,
माया के आँचर आँचर आँचर आँचर आँचि अचंभित भारी।
लाल पौढ़ाई पलक्कन के पालान पल्कन हूँ पलहू नहिं पारी,
'गिरिधर' पुत्र विवाह के पूर्वहि देन लगी जिमिराजहिं गारी।।

इस एक ही छंद में यमक, लाटानुप्रास, पुन: गर्भित पाँच यमक, पुन: छेकानुप्रास पुन: भावि अलंकार जैसे श्रेष्ठ अलंकारों की छ: छ: प्रस्तुतियाँ करके महाकवि गिरिधर ने क्या रीतिकालीन कवियों को यह नहीं बताया कि अपनी चमत्कारिणी काव्य द्वारा साधारण राजाओं को रिझाने की अपेक्षा राजाधिराज प्रभु श्रीराम को रिझाकर एक अनुपम उपहार प्राप्त किया जा सकता है.

इसी प्रकार एक ही साथ पाँच लाटानुप्रास के प्रयोग का एक और चमत्कार देखिए -

राजन राजन राजन राजन
राजन कामहि रामहिं दीजै,
जाग सुभाग बिराग बिरागहिं
जानि तिहूँपुर कीरति लीजै।
हे पुरहूत सखा सति भामहूँ
साची कहौ मन माहिं पतीजै,
गिरिधर ईश शराम्बुद पुष्टि ते
राक्षस वंश दुकाल निछीजै।।

इस छंद के प्रथम चरण में लाटा की पाँच आवृत्ति, द्वितीय चरण में एक, तृतीय चरण में छेकानुप्रास तथा चतुर्थ चरण में रूपक की छटा देख कर क्या सहृदय मयूर की भाँति नहीं नाच पड़ेगा.

इसी प्रकार एक ही चरण में तीन यमकों की शोभा दृष्टव्य है -

बेर करो नहिं शान्ता के बीरन बीरन के मन बेर भई है,

दीप जथा अवसै दिवसै कुबसै निशिज्यौं अवसेर भई है,
भूप प्रतिज्ञा की बेला में गिरिधर मावस ज्यौं अदेर भई है,
आवो न लाओ कुबेर कुबेर कुबेर कुबेर भई है।।

उदाहृत इस एक ही छंद के प्रथम चरण में लाटानुप्रास, द्वितीय चरण में नीरक्षीर न्याय से उपमा अलंकार और छेकानुप्रास, तृतीय चरण में श्लेष और उपमा तथा चतुर्थ चरण में तीन-तीन यमकों की संगुफना महाकवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के परिचय के लिए पर्याप्त है.

इसी प्रकार प्रस्तुत कविता संकलन के प्रथम किरण में आठवें कविता से पंद्रहवें कविता तक व्यतिरेक अलंकार का जिस सजीव और मनोहर शैली में वर्णन किया गया है वह गोस्वामी तुलसीदास जी के अतिरिक्त और किसी कवि चितेरे के काव्य-चित्र में अब तक हमें उपलब्ध नहीं हुआ.

इसी प्रकार रूपक, अतिशयोक्ति, अद्भूतोपमा, अनन्वय, विशेषोक्ति, विभावना आदि सभी प्रसिद्ध अलंकार इस काव्य में प्रस्तुत होकर श्रीरामचरित को सजाकर सचमुच अलंकार बन गए हैं, क्योंकि रीतिकालीन कवियों ने प्राकृत नायक-नायिकाओं के लिए इनका उपयोग करके इन्हें अलंकार की योग्यता से ही वंचित कर दिया था. निष्कर्षत: मैं यही विनम्र निवेदन करना चाहूँगी कि इस काव्य का अनुशीलन करके हम इस तथ्य पर पहुँच जाते हैं कि चन्द्रालोक के रचयिता महाकवि ने यही अक्षरश: सत्य कर दिया है जिसमें जयदेव कवि यह कह रहे हैं कि जो रचनाकार कविता को अलंकार-शून्य मानता है वो अग्नि को शीतल क्यों नहीं मान लेता? अर्थात् जैसे उष्णता के बिना अग्नि रह ही नहीं सकता, इसी प्रकार अलंकार के बिना कविता रह ही नहीं सकती. तात्पर्यत: अलंकार कविता का साधारण धर्म है. यथा,

अंगीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती।।

सौभाग्य से गिरिधर कवि ने श्रीसीताराम केलिकौमुदी की प्रत्येक कविता में एक से अधिक अलंकारों का स्पष्ट एवं सहज रूप से विन्यास किया है इस पर स्वतंत्र एवं एक विशिष्ट अनुसंधान की आवश्यकता है.

चूँकि प्रस्तुत काव्य के प्रणेता महाकवि बालरूप भगवान् श्रीराम के उपासक हैं, अतएव इनके इस काव्य-कलश में वत्सल रस लबालब भरा हुआ दृष्टिगोचर होता है. श्रीसीताराम केलिकौमुदी के पूर्व दो किरणों की प्रत्येक कविता वत्सल रस के विभावों, अनुभावों और संचारी भावों से ओत-प्रोत है. प्रथम किरण में जहाँ महाकवि ने अपने आराध्य बालरूप भगवान् शिशु राम के बालसुलभ अनुभावों की बहुत ही सजीव झाँकी प्रस्तुत की है. वहीं उद्दीपन विभाव के वर्णन में अन्य कवि के लिए कदाचित् कुछ भी नहीं छोड़ा. श्री रामलला माँ कैकेयी से चन्द्र खिलौना माँग रहे हैं उस प्रसंग का एक चित्र देखिए -

राम कही मुसकाय के मायसों तोतर बैन सुभाय सुभौना,
अंक मैं आय मल्हाई ललाइ के चोन्हा दिखाय मिटाय दिठौना।
हाथ उठाइ अंगूरिन सैन दै बारहिं बार निहोरि सलोना,
'गिरिधर' ईश अरे अविलंबहिं माँ मोहिं दीजहु चन्द खिलौना।

अपने शिशु राघव सरकार की भिन्न-भिन्न बाल-स्वरूप की झांकियाँ कवि के मन को मोहें रहती हैं और राघव सरकार के श्री विग्रह पर लगी हुई धूल तो कवि के मन में बस ही गई है. उस झाँकी का एक छंद प्रस्तुत करना यहाँ आवश्यक है -

श्याम शरीर पे धूरि विराजत राजत राम महाछबिधारी,
मानो नवीन पयोधर पे लसी कोटि सुधाधर की उजियारी।
कै हरिजा जल पे हरि नंदिनी की लहरी हरिसूनु सँवारी,
नेह निहाल भयो कवि गिरिधर राघव की शिशु झाँकी निहारी।

गिरिधर कवि की बंद आँखें कभी अपने राघव सरकार को घुटना चलते हुए निहारती हैं तो कभी उन्हें निरंजन के दृग में अंजन के दर्शन करा देती हैं - 'गिरिधर जन्म कू लाभ लह्यो ज्यों निरंजन के दृग अंजन देख्यो'.

श्रीसीताराम केलिकौमुदी का द्वितीय किरण तो हिन्दी साहित्य के लिए एक सत्क्रांतिकारी युग का शुभारंभ करने वाला है क्योंकि अभिज्ञान शाकुंतलम् के काव्य एवं मानस के जनक जी के वर्णन को छोड़कर कहीं भी साहित्य में पुत्री-विषयक वत्सल रस का वर्णन उपलब्ध नहीं होता. सौभाग्य से प्रस्तुत ग्रंथ में द्वितीय किरण के १०८ छंदों में महाकवि ने वत्सल रस का समग्र वर्णन प्रस्तुत किया है. पुत्री-विषयक वत्सल रस के विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का भगवती सीताजी की बाल-लीला के परिप्रेक्ष्य में जितनी स्वाभाविकता से चित्रण किया है, इस वत्सल रस के रसिक चितेरे ने, वह अन्यत्र सर्वथा सुदुर्लभ है जैसे,

मोछ छुये कबहूँ नृप की, कबहूँ नख ते सो कपोलनि नोचै,
नाक डारै कबौ अंगुरी, कबहूँ कहि गूं गां सनेह सकोचै।
देखि खिलौना कबौं किलकै, कबहूँ पितु काँध पे बैठन सोचै,
गिरिधर स्वामिनी सोच विमोचनि, लाल के ब्रह्म विचारहिं मोचै।।

महाकवि समाज की उस कुरीति पर भी तीक्ष्ण प्रहार करते हुए दिखते हैं जो आज भी पूरे वातावरण को विषाक्त कर रही है. उनकी मान्यता के अनुसार किसी भी अंश में बेटा से बेटी कम नहीं है -

गिरिधर रानि पचारि कहै बलि बेटा ले कोटि गुनी बड़ी बेटी।।

इस ग्रंथ के रचयिता की दृष्टि नष्ट होते हुए पर्यावरण पर भी जाती है और द्वितीय किरण के अंतिम भाग में कौमुदी की सीताजी वृक्षों को काटने से रोकती हुई उन्हें राखी बाँध कर वृक्षों के प्रति मंगल-कामना करती हैं -

सीय कहे जग सार के सार ए
भोर्यो बिरीछ कबौ न कटावौ,
ये परिमावरनी सरवस्व है
भूतल पूत इन्हें न मिटावौ
ये बरधा के निदान औ प्रान है
स्वास्थ्य लागि इन्हैं न छँटावौ,
गिरिधर जो इन्हैं काटन चाहत
डाँटि तिन्हैं हटकौ और हटावौ।।

इस प्रकार काव्य की रीतिकालीन परम्परा से पूर्णतया पोषित, भारतीय संस्कृति के सामाजिक-धार्मिक-आध्यात्मिक और राजनैतिक पक्षों को उजागर करने वाले गिरिधर कवि के प्रौढ़ पाण्डित्य और भक्ति रस से इस 'सीताराम केलिकौमुदी' काव्यरत्न पर प्रभु श्रीसीतारामजी की प्रेरणा से कुमुदिनी नामक टीका लिखने का मुझे स्वर्णिम सौभाग्य प्राप्त हुआ. जहाँ-जहाँ मुझे भाव एवं शब्दार्थ को समझने में जटिलता हुई वहाँ-वहाँ मैंने इस ग्रंथ के रचयिता महाकवि से विचार-विमर्श करके विषयों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है. इस ग्रंथ-रत्न के रहस्यों को कुमुदिनी टीका के माध्यम से कितने अंशों में मैं स्पष्ट कर सकी हूँ इसका आकलन तो निरन्तर श्रीराम भक्त साहित्यप्रेमी व्युत्पन्न सुधीपाठक-जन ही करेंगे परंतु इतना तो मैं विश्वासपूर्वक कहना चाहूँगी की इस टीका का प्रत्येक अंश प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता महाकवि की संपत्ति और अवधारणा का सम्मान करके ही लिखा गया है. अत: आप सब इसका श्रद्धा और विश्वासपूर्वक अनुशीलन और अध्ययन करें, यही महाकवि की प्रतिभा की पूजा होगी.

शिक्षा का जोश

कृष्ण मुरारी चौरसिया

है शिक्षा का कर्तव्य यही, शिक्षा का दीप जलायें हम।
ज्ञान-ज्योति से आलोकित कर, सबका मन हर्षायें हम।।

जन-जन को जाग्रत करना ही, अपना लक्ष्य बनायें हम।
शिक्षा ही आदर्श सभ्यता, इसका अभियान चलायें हम।।

रोक नहीं सकती विकलांगता, शिक्षा का जोश बढ़ायें हम।
दुनिया की ऐसी संस्कृति नहीं, जिसको समझ न पायें हम।।

है शिक्षा का जोश हमें, इसकी प्रतिभा दिखलायें हम।
शिक्षा ही आदर्श सभ्यता, इसका अभियान चलायें हम।।

खोये रहते अध्ययन में, महसूस न करते विकलांगता हम।
विश्व में बने अलग पहचान, शिक्षा जगत् में श्रेष्ठ रहें हम।।

है शिक्षा का कर्तव्य यही, शिक्षा का दीप जलायें हम।
शिक्षा ही आदर्श सभ्यता, इसका अभियान चलायें हम।।

बने रहो जोगी

डॉ. सुरेश प्रकाश शुक्ल

अपने यहाँ वाकई भेदभाव बहुत है. ऊँच-नीच के खंदक को पाट देने के प्रयास बहुत दिनों से जारी हैं फिर भी दूसरे खेमों में भी झाँकना पड़ता है. पाते हैं कि लड़के-लड़की में भेद, पढ़े-गँवार में भेद, कमाऊ-उठल्लू का भेद और हजारों-लाखों मतभेद. जाहिर है जहाँ लाभ नज़र आता है, वहाँ भली दिखती है और जहाँ हानि दिखे, उससे तो मौला बचाए. फिर भी जब समाज में रहते हैं, परिवार में कहते हैं और सारे देश की धारा में बहते हैं तो भेद और मतभेद के किले भी ढहते हैं क्योंकि सभी तरह की स्थितियों-परिस्थितियों से हमें दो-चार होना ही पड़ता है.

लेकिन बेचारे जोगी का जीवन कैसे बीते? एक तो कुद्दरुप और दूसरे जबान भी बहुत फँसती है. शुरू से ही सबके उपहास, घृणा और कभी-कभी दया के पात्र रहे जोगी न तो पढ़-लिख पाए और न अधिक समझदारी ही आ पाई. शरीर भी इतना कमजोर कि फूँक मारे उड़ते थे जोगी. बाहर क्या अपने ही घर में जोगी को रोगी समझा जाता था और सभी उनका तिरस्कार करते थे. अत: एक दिन मेरे पास आकर कराहने लगे.

'क्या करें, कहाँ जाएँ? मुझको तो कोई काम भी नहीं देगा और काम होगा भी तो नहीं अपने से. भइया, तुम्हीं कहो जिएँ कैसे? घरवाले तो मुझसे ऊब ही गए हैं.'

उन पर बड़ा तरस आया. पिंजरा शरीर, मुँह में गड्ढे, फटी लुंगी और आँतें कलाबत्तू. कुछ खाने को दिया तो आँखें चमकीं. मैंने पूछा, 'लेकिन कुछ काम-धाम करते काहे नहीं? घर में ही रहने दो, हर एक निशान चोट का, यहाँ चलता है बस एक ही रिश्ता नोट का.'

'हाँ भइया, तभी तो मैं भारू हो गया. सोचता हूँ संन्यास ले लूँ. कम से कम माँग-जाँच कर पेट तो भर ही लूँगा.'

'और अपने बीबी-बच्चों का क्या करोगे? उनकी जिम्मेदारी भी तुम्हें ढोनी है सो?'

'अरे! सब ढकोसला है ससुर. बीबी-बच्चे हुंह....वो लोग भी तो मुझे जानवरों की तरह हाँकते है. फिर मुझे क्यों हो उनसे हमदर्दी?'

और आगे कुछ कहते उससे पहले ही उन्हें जैसे बर्र ने काट लिया हो. धड़ से उठे और नौ-दो-ग्यारह. उन्हें देख मैं फिर सोचने लगा. क्या वाकई जोगी संन्यास ले लेगा?

कई दिन बीते पर जोगी के दर्शन दुर्लभ होते चले गए तो मन में शंका हुई. जाकर जोगी के घर देखा तो मेरा शक यकीन में बदल गया. उनके पिता जी दहाड़ रहे थे - 'तुम सेंत में कोहराम मचाये हो बहू. वैसे भी वो जोगी कौनसा हमारे काम का था? वह सुबह-शाम रिरियाया करता था और सेरों अनाज भिंजारता था.'

अब तो जोगी की बहू अकड़ गई अपने ससुर से, 'बस करिए बाबू जी, वे आपके लिए न सही पर मेरे काम के तो हैं. अरे! हमारी जीवन-डोर उन्हीं की पतंग से लटकी है. आज आठ दिन से उनका पता नहीं और आप लोग उन्हें तलाशने की बजाय उनके जाने से ख़ुश हो रहे हैं.'

सुन कर सब लोगों कि जुबान को ताला लग गया और दौड़-धूप शुरू हुई, तलाश होने लगी. लेकिन जोगी पता नहीं किस खोह में घुस गया कि हफ़्ते क्या, महीनों, फिर सालों बीत गए और जोगी न लौटे. अब धीरे-धीरे सारा मामला टाँय-टाँय फिस्स. जोगी को गए जब आठ साल बीत गए तो उसकी पत्नी के सिवाय सभी उन्हें भूल गए. उधर जोगी ने घर से ऊब कर अपना कहा कर दिखाया और संन्यासी बन कर

दर-दर भटके, घूमे. कभी पैदल, कभी गाड़ी में. कभी भर पेट भोजन किया और कभी फाँके किए. परंतु उनका मन एक जगह काम में लगता, तभी तो जोग करते जोगी. आठ सालों में फिर से दिमाग घुमा लिया और एक दिन अचानक घर वापस आ गए. परंतु उनकी हिम्मत घर में जाने की नहीं थी. बढ़ी हुई खिचड़ी दाढ़ी, बड़े बाल, जोगिया कपड़े और कमंडल. देखते ही बच्चों ने, नन्हें पिल्लों ने उनकी खबर ली. पहचान कोई न पाया. तभी चारा-पानी में जुटी उनकी पत्नी की नज़र उनसे मिली तो जोगी उसकी ओर लपके. उसने पहचाना, तो उन्हें मार-गाली से तो बचा लिया पर साफ़ कह दिया, 'जाओ, और बने रहो जोगी. अब तुम्हारा कुछ नहीं है. तब से पता नहीं जोगी का क्या हुआ?

देश

डॉ. किशोर काबरा

देश की अच्छी हिफ़ाज़त कर रहे हो,
खेत विधवा का समझ कर चर रहे हो!

जो पराये थे, किया उनने यही सब,
तुम हमारे हो; अरे, क्या कर रहे हो?

हाथ दोनों जोड़ कर कल भटकते थे,
आज दोनों हाथ से घर भर रहे हो!

झोपड़ी के नाम सूखा लिख दिया है,
महल पर बरसात बन कर झर रहे हो!

सिंह सोया है जगा दूँ तुम कहो तो,
मौत कुत्ते की अरे, क्यों मर रहे हो?

मुझको इतने से काम पे रख लो....

गुलजार

मुझको इतने से काम पे रख लो...
जब भी सीने पे झूलता लॉकेट
उल्टा हो जाए तो मैं हाथों से
सीधा करता रहूँ उसको.

मुझको इतने से काम पे रख लो...
जब भी आवेज़ा उलझे बालों में
मुस्कुराके बस इतना सा कह दो
आह चुभता है ये अलग कर दो.

मुझको इतने से काम पे रख लो....
जब ग़रारे में पाँव फँस जाए
या दुपट्टा किवाड़ में अटके
एक नज़र देख लो तो काफ़ी है.
मुझको इतने से काम पे रख लो....

कविता अटल बिहारी की

डॉ. त्रिभुवन नाथ शुक्ल

साहित्य में ख्याति का प्रतिमान एक निश्चित मानक पर आधारित होता है. उस मानक से विचलन होने पर अनेक निराधार और साधार भी प्रश्न खड़े हो उठते हैं. ऐसा ही कविता को लेकर बाजपेयी के मूल्यांकन के साथ है. इस मूल्यांकन का भी अलग-अलग दृष्टिकोण है. यहाँ दो लोगों के दृष्टिकोण उद्धृत हैं. एक है हरिशंकर परसाई का और दूसरा है प्रो. विष्णुकांत शास्त्री का.

हरिशंकर परसाई ने 'कविवर अटल बिहारी' शीर्षक से एक व्यंग्य लिखा है. इसमें वे लिखते हैं - 'बहुत लोग मुझसे पूछते हैं क्या अटल बिहारी कवि हैं? मैं कहता हूँ, अगर सिर्फ़ कवि कहोगे तो पिटोगे. वे महाकवि हैं मगर टेम्पोरेरी महाकवि हैं. कुछ कवि होते हैं और कुछ कवि माने जाते हैं. निराला, पंत, कवि थे, अटल बिहारी पदेन यानी एक्स आफीसियो कवि हैं, टेम्पोरेरी हैं.' (पत्रिका संघर्ष पथ - अंक१, अगस्त १९९६ इटावा से उद्धृत). प्रो. विष्णुकांत शास्त्री का अभिमत है - 'वज्र से भी कठोर अडिग संकल्प-सम्पन्न राजनेता श्री अटल बिहारी बाजपेयी के कुसुम कोमल हृदय से उमड़ पड़ने वाली कविताएँ गिरि हृदय से फूट पड़ने वाली निर्झरियों के सदृश एक ओर अपने दुर्दांत आवेग से किसी भी अवगाहन कर्ता को बहा ले जाने में समर्थ हैं वहीं दूसरी ओर वे अपनी निर्मलता, शीतलता और प्राणवत्ता से जीवन के दुर्गम पथ के राहियों की प्यास और थकान को हरकर नई प्रेरणा की संजीवनी प्रदान करने की क्षमता से भी सम्पन्न हैं. इनका सहज स्वर तो देशभक्तिपूर्ण शौर्य का ही है, किन्तु कभी-कभी नव सर्जना की वेदना से ओत-प्रोत करुणा की रागिनी को भी ये ध्वनित करती हैं.' (मेरी इक्यावन कविताएँ के फ्लैप से उद्धृत).

स्पष्ट है कि हरिशंकर परसाई और प्रो. विष्णुकांत शास्त्री के अभिमतों में बहुत अन्तर है. यह अन्तर इतना अधिक है कि मतांतर-सा दिखाई पड़ने लगता है. अब सवाल यह उठता है कि यह मूल्यांकन बाजपेयी का है या कवि बाजपेई का. स्पष्ट है कि परसाई ने कवि बाजपेयी नहीं, अपितु एक राजनीतिक बाजपेयी का मूल्यांकन किया है और प्रो. शास्त्री ने मात्र कवि बाजपेयी की काव्य-संवेदना को रेखांकित किया है.

हमारा उद्देश्य भी है - कवि अटल बिहारी की कविता का मूल्यांकन. साहित्य समीक्षा के स्थापित प्रतिमान सर्जनात्मकता का मूल्यांकन जहाँ रचनाकार के संस्कार, अर्जित ज्ञान, विचारधारा और प्रभावित करने वाले संपूर्ण परिवेश के आलोक में करने के पक्षधर हैं. वहीं इससे भिन्न नई समीक्षा इससे भिन्न प्रतिमान के द्वारा साहित्य का मूल्यांकन करती है. उसके द्वारा कृति मात्र ही समीक्षा के केन्द्र में रहती है, कृतिकार से उसका कोई लेना-देना नहीं होता है. समीक्ष्य संदर्भ मूल्यांकन की दोनों परंपराओं की कसौटियों पर खरा उतरता है. यह एक संयोग है और रचनाकार की रचना-शक्ति का प्रमाण भी. साहित्यकार मानव कर्म से प्रभावित होकर, स्वयं उसे प्रभावित कर सुनियोजित दिशा में उन्मुख करने में सक्षम होता है. यही उसकी सार्थकता है और श्रेष्ठता भी. मानव-कर्म को प्रभावित करने का कार्य कवि अपने दृष्टिकोण के अनुरूप करता है, जिसकी निर्मिति उसके अनुभवों पर आधारित होती है. अटल बिहारी बाजपेयी का भी समाज और मानव-जीवन के संबंध में एक निश्चित दृष्टिकोण है जो उस विचारधारा से प्रभावित है जिसका विरोध तथाकथित प्रगतिवादियों का फैशन है. संभवत: यही वह कारण है जो अटल जी के कवि-मन और कर्म का निष्पक्ष मूल्यांकन करने में बाधक बनता रहा है. इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि बाजपेयी जी की कविता पर उनकी राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव है जो उन्हें कहीं सपाटबयानी तो कहीं भगवे के नारे में उलझा देता है. ऐसे प्रसंगों में वह निश्चित रूप से कवि-कर्म से

चूकते प्रतीत होते हैं. मगर ऐसी रचनाओं की भी बहुलता है जो तीव्रतम मानवीय संवेदना का उद्घोष करती हैं.

अटल जी मूलत: राष्ट्रीय गौरव, उसकी अस्मिता और पीड़ा के मुखर कवि हैं. देश की समस्याओं को आँकने और उनका निराकरण करने के संबंध में उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता होने पर भी आम मानव के सुख-दु:ख की अनुभूति निजता-बोध के स्तर तक उतर आती है. मानवता के उत्थान और विजय के जिस लक्ष्य को भारतीय चिन्तन परम्परा में प्रमुखता मिली है, कवि अटल उसी की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं. प्राय: प्रश्न किया जाता है कि उनमें राजनेता का पक्ष अधिक मुखर है या कवि का? यह प्रश्न ही निरर्थक है. वस्तुत: अटल बिहारी बाजपेयी का मानवीय पक्ष ही प्रबल है. वह सच्चे अर्थों में मनुष्य हैं. और उनकी इसी विशिष्टता से उनके दोनों कर्म, राजनीति और कविता स्थायी आधार ग्रहण करते हैं. इसीलिए उनकी चिन्तन-धारा मानव के संपूर्ण अस्तित्व से जुड़ती हुई चलती है. भावनाओं के ह्रास, घोर व्यक्तिवादिता और क्षुद्र संकीर्णता के इस युग में जीवन के उद्देश्य और सार्थकता का प्रश्न अटल जी को सबसे अधिक मथता है. असीमित भौतिक लालसाओं एवं उपलब्धियों की मृग-मारीचिका के पीछे भागता मनुष्य अपनी श्रेष्ठता का मानदंड भी इसी में जोड़ता है. ऐसी श्रेष्ठता किस काम की जो अहं को जन्म दे, जो संवेदनाहीन बना दे और जो एकाकीपन का संत्रास झेलने के लिए विवश कर दे. आख़िर पहाड़ भी तो ऊँचा उठता है, घास-वृक्ष से हीन सर्द मौत से लिपटे ऐसे पर्वतों का क्या मोल जिसकी ऊँचाई हीन भाव तो उत्पन्न कर सकती है पर किसी को छाया तक नहीं दे सकती. ऐसे ही ऊँचे लोगों के पाखण्ड और सूनेपन को व्यक्त करने वाली पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

जो जितना ऊँचा
उतना ही एकाकी होता है
हर भार को स्वयं ढोता है,
चेहरे पर मुस्कानें चिपका
मन ही मन रोता है.
जरूरी यह है कि
ऊँचाई के साथ विस्तार भी हो
जिससे मनुष्य
ठूँठ-सा खड़ा न रहे
औरों से घुले-मिले
किसी को साथ ले
किसी के संग चले.

मानव-जीवन एक यात्रा है. इस यात्रा का अंतिम सोपान है, 'मृत्यु'. यात्रा में आपा-धापी, भाग-दौड़ चलती रहती है. भीतर से खोखले और विकृत जन भी आदर्श का मुलम्मा चढ़ा कर दुनिया को धोखा देने में अपने जीवन को धन्य मान गर्व से गर्दन उठाए इतराते हैं. दुनिया को धोखा देना जितना सहज है, अपने-आप को उतना ही कठिन. जीवन-यात्रा की समाप्ति पर हर चेतन प्राणी आत्मवलोकन करता है. तब उसे अपने खोखलेपन और निरर्थकता का ज्ञान होता है. जीवन तो उसी का सफल है जो आत्मचिंतन की इस बेला में भी अपने कर्म पर आत्मग्लानि का कारण न पा सके तथा उस अपनी स्वार्थहीन सर्वजनीनता और उद्देश्य की पवित्रता पर संतोष कर सके.....

अंतिम यात्रा के अवसर पर
विदा की बेला पर

जब सबका साथ छूटने लगता है
शरीर भी साथ नहीं देता
तब आत्मग्लानि से मुक्त
यदि कोई हाथ उठाकर यह कह सकता है
कि उसने जीवन में जो कुछ किया
यही समझ कर किया
किसी को जान-बूझकर चोट पहुँचाने के लिए नहीं
सहज कर्म समझ कर किया
तो उसका अस्तित्व सार्थक है
उसका जीवन सफल है.

बड़प्पन का मोह, उपलब्धियों पर अहं और अभावजन्य हीनता एक ही कोटि में तब प्रतीत होने लगते हैं जब इनके थोथेपन और निस्सारता का ज्ञान हो जाता है. कांति बाह्य नहीं अन्तर्भूत होनी चाहिए. मानवता के धरातल पर छोटे-बड़े सब समान हैं. श्रेष्ठता का मापदण्ड मानव-मूल्य हैं. आसक्तियों के पीछे न भागकर, इन्हीं मानव-मूल्यों को चरम परिणति तक ले जाना ही वास्तविक ऊँचाई है. पर इसके लिए चाहिए दृढ़ संकल्प वाला अन्तर्मन, जो निराला के राम की तरह हो और दैन्य तथा निराशा से दूर रहे. यही मनुष्य की वास्तविक पहचान है.....

मनुष्य की पहचान
उसके धन या आसन से नहीं होती,
उसके मन से होती है.
मन की फ़क़ीरी पर
कुबेर की सम्पदा भी रोती है.

मन की फ़क़ीरी पलायन नहीं, अपितु भारतीय दर्शन में वर्णित संसार का भोग करते हुए भी उसकी आसक्ति से अलिप्तता का परिचायक है. पलायन तो तब होता जब जीवन-समर से भागने का भाव होता. यहाँ निजी अनुभूतियों, महत्वाकांक्षाओं और सपनों को सर्व-जन के हितों से जोड़ने तथा व्यष्टि को समष्टि की तरफ उन्मुख करने की उद्दाम लालसा है. समस्त क्षमताओं की सार्थक अभिव्यक्ति सृष्टि के अथाह सागर में कूद कर मनुष्यता की नौका को डूबने से बचाने में है.....

आदमी को चाहिए कि वह जूझे
परिस्थितियों से लड़े,
एक स्वप्न टूटे तो दूसरा गढ़े.
किन्तु कितना भी ऊँचा उठे,
मनुष्यता के स्तर से न गिरे
अपने धरातल को न छोड़े
अंतर्यामी से मुँह न मोड़े.

अटल जी सौंदर्य को उसके महत् रूप में ही देखने के पक्षधर नहीं हैं. सत्य है कि महान् क्षणों, कृत्यों एवं परंपराओं से संसार आलोक ग्रहण करता है. फिर भी मानवोचित सामान्य भावनाओं के सौंदर्य और उसके महत्व को झुठलाया नहीं जा सकता. यही छोटी भावनाएँ सुख-दु:ख, रोना-हँसना, प्रेम-क्रोध अपनी स्वाभाविकता के कारण मानव-जीवन को एक-रसता से बचाती हुई उसके सौंदर्य में अभिवृद्धि करती

हैं. सूर्य और ओस इसी भाव के प्रतीक हैं. सूर्य का प्रकाश जीवन का आवश्यक तत्व है. उसकी अपनी महत्ता भी है. ओस की-सी क्षणिकता और प्राकृतिकता उसमें कहाँ.....

सूर्य एक सत्य है
जिसे झुठलाया नहीं जा सकता
मगर ओस भी तो एक सच्चाई है
यह बात अलग है कि ओस क्षणिक है
क्यों न मैं क्षण-क्षण को जीऊँ
कण-कण में बिखरे सौंदर्य को पीऊँ.

ओस और उसकी क्षणिकता के प्रति मोह में मानव-जीवन की उसकी सम्पूर्णता के साथ स्वीकृति का भाव है. मानव-देह और उसकी सीमाओं पर अगाध विश्वास का प्रतीक है. स्वीकृति और विश्वास ही मनुष्य को सार्थकता की ओर ले जाने वाले प्रमुख कारक हैं. क्योंकि स्वीकृति प्रतीति है और विश्वास प्रीति का कारण. बिना प्रतीति के प्रीति की कल्पना असंभव है, इसीलिए गोस्वामी जी को कहना पड़ा, 'बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती.' ऐसे ही शाश्वतिक संदर्भों का जयघोष छायावादी रचनाओं को शक्ति-काव्य का स्वरूप प्रदान करता है. जीवन के वास्तविक सौंदर्य का बोध अटल जी की काव्य-रचना का सबलतम पक्ष है. पर वह मात्र सौंदर्य-बोध के ही कवि नहीं हैं. भारतीय समाज की सारी विसंगतियों का भोगा हुआ ज्ञान भी उन्हें है. दोनों ओर फैले शकुनियों के जाल के बीच मासूम बच्चों, बूढ़ी औरतों और जवान मर्दों की लाशों पर चढ़ कर सत्ता के सिंहासन तक पहुँचने की लालसा रखने वाले सत्ता पिपासुओं के कृत्यों ने उनके कोमल हृदय को पीड़ा का भंडार बना दिया. इससे उबरने के लिए जन-जाग्रति उनके लिए काम्य है.....

भरी दुपहरी में अँधियारा
सूरज परछाई से हारा,
अन्तराम का नेह निचोड़ें, बुझी हुई बाती सुलगाएँ.
आओ फिर से दिया जलाएँ.

दीपक तो नेह से ही जलेगा. प्रेम की सर्व स्वीकार्यता पर प्रश्न-चिन्ह हो ही नहीं सकता. व्यक्तिगत प्रेमानुभूति का व्यापकीकरण जगत् को अपने भीतर समेट लेता है तभी तो रचनाकार चेतना के प्रकाश से आलोकित हो उठा है. परिणाम-स्वरूप जन-जन की पीड़ा उसकी अपनी पीड़ा में परिवर्तित हो जाती है और इससे मुक्ति की यात्रा में उसके व्यक्तित्व के उस पक्ष का दर्शन हो जाता है, जो दृढ़ संकल्पवान व निराशा और हीनता से परे है. अटल जी और अन्य में ही यही अन्तर है कि वह सुप्त-प्राय जन-चेतना को झकझोरते तो हैं पर यहीं तक सीमित नहीं हैं. वह तटस्थ दृष्टा-मात्र नहीं हैं. वह तथाकथित बुद्धिजीवियों की तरह भोथरे नारे के पाखण्ड को ही अपना साध्य समझ कर नहीं बैठ जाते, बल्कि स्वयं व्यक्तिगत स्वार्थों से परे होकर जीवन-समर में उतर पड़ने वाले जननायक बन जाते हैं. हरिशंकर परसाई द्वारा बाजपेयी जी के मूल्यांकन के संदर्भ में की गई टिप्पणी के कारण उनके ऊपर पूर्वाग्रही एवं कुंठाग्रस्त का आरोप लगने का पूरा ख़तरा है. उनके सदृश पूर्वाग्रही एवं कुंठाग्रस्त विचारक ही इस तथ्य को नकारने का प्रयत्न करते हैं. परसाई जी का अटल जी पर व्यंग्य लेख उनकी विचारधारा के प्रति अपनाये जाने वाले दोहरे मापदंडों का एक अन्य उदाहरण है. कवि अटल की अनुभूतिपरक व्यापकता और आदर्श सामाजिक व्यवस्था के निर्माण का प्रसंग लेकर लिखी गई उनकी पंक्तियाँ आधुनिक हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठतम कवियों से तुलनीय हैं.....

टूट हुए सपने की कौन सुने सिसकी?

अन्तर को चीर व्यथा पलकों पर ठिठकी.
हार नहीं मानूँगा
रार नयी ठानूँगा
काल के कपाल पर लिखता मिटाता हूँ.
गीत नया गाता हूँ.

यही वास्तविक शौर्य है जो इतना साहस और दृढ़ संकल्प उत्पन्न कर देता है कि कवि सारी बाधाओं और बुराइयों को रौंदता-सा कर्तव्य-पथ पर आगे बढ़ चलता है. कहीं कोई संशय नहीं है. भय नहीं है. मौत में भी इतनी क्षमता कहाँ कि उसे विचलित कर सके.....

मौत की उम्र क्या? दो पल भी नहीं,
जिन्दगी-सिलसिला आज कल की नहीं
मैं जी भर जिया, मैं मन से मरूँ
लौटकर आऊँगा कूच से क्यों डरूँ
पार पाने का क़ायम मगर हौसला
देख तूफाँ का तेवर तरी तन गई
मौत से ठन गई.

नश्वरता में सर्जना के बीज और जीवन की अमरता का जय-घोष निराला के पौरुष का भी मुख्य स्वर है. अटल जी का स्वर कूच समीक्षकों की दृष्टि में उपेक्षणीय मात्र इसलिए हो गया कि निराला और अन्य आधुनिक कवि येन-केन-प्रकारेण इन समीक्षकों की विचारणा के खाँचे में भर लिए गए पर अटल बिहारी बाजपेयी तो इस तथ्य के उदाहरण हो गए कि अन्य विचारधाराओं का भी मानवीय संवेदनाओं पर उतना ही अधिकार है. दलित, शोषित, हीन-दीन प्राणियों की समस्या पर एकाधिकार समझने वाले साहित्यिक वर्ग को सारी समस्या का समाधान अटल जी के कृतित्व को नकारने में ही सूझा. महान् व्यक्तियों और विचारों का प्रखर विरोध नियति का एक खेल रहा है. परंतु संघर्ष-यात्रा का गौरव तो पथ कंटकों से न घबराकर निरंतर लक्ष्य की ओर बढ़ते चले जाने में है. सत्य का असत्य से, प्रकाश का अंधकार से संघर्ष आज का नहीं, अपितु शाश्वत् है. ये दोनों एक-दूसरे के पूरक ही होते हैं. बिना एक के आख़िर दूसरे का महत्व ही क्या. शत्रु की प्रबलता भी निष्ठा से डिगा सकने में सक्षम नहीं है.....

सत्य का संघर्ष सत्ता से,
न्याय लड़ता निरंकुशता से,
अँधेरे ने दी चुनौती है,
किरण अन्तिम अस्त होती है.
दीप निष्ठा का लिए निष्कम्प
वज्र टूटे या उठे भूकंप,
यह बराबर का नहीं है युद्ध
हम निहत्थे शत्रु है संनद्ध
हर तरह के शस्त्र से है सज्ज
और पशुबल हो उठा निर्लज्ज.

शत्रु देश का हो या विदेश सबको चेतावनी का खरा सुनना पड़ता है. समस्त मानवता की चिंता करते हुए भी अटल जी इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं कि मानव अस्मिता का सबसे बड़ा प्रतीक उसका अपना राष्ट्र है. राष्ट्र की पराधीनता अस्तित्व के लिए गंभीर संकट किस तरह उत्पन्न करता है

इससे वह अनभिज्ञ नहीं हैं. जब संपूर्ण अस्तित्व ही राष्ट्र से जुड़ा हुआ है, तब राष्ट्र पहले स्थान पर आ जाता है. उसकी सुरक्षा और समृद्धि में सभी तिरोहित हो जाते हैं. देशाभिमान की चिंगारी जन-जन के हृदय में व्याप्त है.....

कोटि-कोटि आकुल हृदयों में
सुलग रही है जो चिंगारी
अमर आग है अमर आग है.

इस अमर आग में देश के शत्रुओं को भस्मीभूत कर देने की सामर्थ्य है. लेकिन अस्मिता की रक्षा याचना से तो हो नहीं सकती. इसके लिए प्राणों को बलिवेदी पर चढ़ा देने का त्याग अपेक्षित है. इस दिशा में कोई ढील नहीं, समझौता नहीं. तभी तो कोमल मन दृढ़ता से आवश्यकता पड़ने पर रक्तार्पण के लिए तत्पर है. कलंक-कालिमा को धोकर नये इतिहास का निर्माण जल से नहीं रक्त से ही संभव है.....

अब शोणित से इतिहास नया लिखना है
बलि पथ पर निर्भय पाँव आज रखना है.

हमारे सौहार्द्र, त्याग और सेवा-भाव से किसी को हमें शक्तिहीन समझने का भ्रम नहीं होना चाहिए.....

एक हाथ में सृजन दूसरे में हम प्रलय लिए चलते हैं
सभी कीर्ति-ज्वाला में जलते, हम अंधियारे में जलते हैं.

अटल जी का प्रखर राष्ट्रवाद मानवता के समानान्तर चलता है. वह जंग से घबराता नहीं है. परंतु शस्त्रों का युद्ध उसके लिए विवशता में ही स्वीकार्य है. सामान्य परिस्थितियों में यह युद्ध भूख, गरीबी और बीमारी से है तथा इसमें सारे विश्व का आह्वान है.....

हमें चाहिए शांति जिन्दगी हमको प्यारी
हमें चाहिए शांति सृजन की है तैयारी
हमने छेड़ी जंग भूख से, बीमारी से
आगे आकर हाथ बटाये दुनिया सारी.

उम्र के अन्तिम पड़ाव में विरक्ति-जनित शान्ति और अंतर्मुखता स्वाभाविक प्रवृत्ति है. जीवन संध्या की आहट पचास वर्ष आयु पूर्ण होने के साथ ही मिलने लगी और समय के साथ पग-ध्वनि तीव्र होती गई. आयु की ढलान पर अतीत के मधुरिम क्षणों की स्मृति और उसकी वर्तमान से तुलना का भाव दर्शनीय है.....

बचपन याद बहुत आता है
यौवन रसघट भर लाता है
बदला मौसम ढलती छाया
रिसती गागर लुटती माया.

प्रतिवर्ष पुनरावृत्ति करने वाला जन्मदिन मृत्यु के और समीप पहुँचने का अहसास भर नहीं है अपितु आत्मावलोकन की प्रक्रिया को दृढ़तर करने में सहायक भी है. उम्र का हर पड़ाव चेतना की ऊर्ध्वमुखी सीढ़ी है जो अपने अन्तर की विवशताओं और कमियों को खोज़-खोज़ कर निरंतर परिष्कारोन्मुख करता है. चेतनशील व्यक्ति जानता है कि दूसरों को सफाई या तर्क देकर निरुत्तर करना सहज है मगर अपने-आप से छल या दूर भागना संभव नहीं. अटल जी की चेतना भी इस तथ्य को स्वीकार करती है.....

मैं भीड़ को चुप करा देता हूँ
मगर अपने को जवाब नहीं दे पाता
मेरा मन मुझे अपनी ही अदालत में खड़ा कर

जब जिरह करता है
मेरा हलफ़नामा मेरे ही ख़िलाफ़ पेश करता है,
तो मैं मुक़दमा हार जाता हूँ
अपनी ही नज़र में गुनहगार बन जाता हूँ.

काव्य के सृजन का न तो कोई मुहूर्त होता है और न ही कोई ऋतु. अत्यंत व्यस्त चर्या में भी कभी-कभी काव्य का सृजन हो जाता है और कभी-कभी तो उम्र अवकाश रहने पर भी काव्य-सृजन नहीं हो पाता है. मनुष्य जितना व्यस्त होगा, जितना ही आकुल-व्याकुल होगा, जितनी ही उसमें परदु:ख-कातरता होगी, उसकी काव्य-सरस्वती भी उतनी ही घनीभूत होगी. बाजपेयी का पूरा काव्य इन्हीं घनीभूत क्षणों और देश की जड़ीभूत राजनीतिक व्यवस्था के मध्य आकर ग्रहण करता है. यही कारण है कि वह एक से पथ्य ग्राही के लिए सुस्वाद लगता है और तदभिन्न पथ्य ग्राही को अरुचिकर और त्याज्य.

पाखी

कमल कपूर

मैं एक ऐसा पाखी हूँ
जिसे चाहिए शब्दों का चुग्गा
और स्याही का पानी
कलम का पिंजरा
और भावनाएँ नूरानी
चुन अक्षरों के ताने-बाने
रचना का नीड़ बनाना
कागज़ों के आसमान पर
खूब ऊँचे उड़ते जाना
मेरी कल्पनाओं के पंखों में प्रभु!
बल तुम खूब जगाना.

चित्रकूट वैशिष्ट्यम्

हेमराज चतुर्वेदी 'नन्हें राजा'

मनीषियों के मतानुसार सम्पूर्ण जगत् परमब्रह्म की संरचना है. इसीलिये इसे ब्रह्माण्ड कहते हैं. पुनरपि ब्रह्माण्ड में भी कुछ विशेष स्थल हैं, जैसे काशी, हरिद्वार, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, चित्रकूट, ये महान् तीर्थ होने के कारण जगत् प्रसिद्ध हैं. अब प्रश्न उठता है कि तीर्थ कैसे बनते हैं? तो 'तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि' प्रमाण है.

इन्हीं में से एक हमारा चित्रकूट है जो अपनी विशिष्ट विशेषताओं के कारण आज भी अपना वैशिष्ट्य प्रतिपादित किये हुये है.

वैशिष्ट्य में - पहले देवनि गिरि गुहा, राखै रुचिर बनाय। चरितार्थ है ऋषि-मुनियों के तप से शोधित ब्रह्माजी की प्रथम यज्ञ-स्थली जिसे भगवान् श्रीराम के चिरनिवास होने का गौरव प्राप्त हो, प्रमाणस्वरुप 'चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत। राम नाम जप जापकहिं तुलसी अभिमत देत।।'

ऐसी चित्रकूट भूमि जिसके विषय में कुछ भी कहा जाये, कितना भी चिन्तन किया जाये, थोड़ा होगा. युगानुसार परिवर्तन शाश्वत् सत्य है फिर भी नित-नूतन संकल्पों के लिये चित्रकूट में अभिमत प्राप्त होते रहते हैं.

'गुरु बिन होय न ज्ञान', को प्रमाणित करने हेतु पूज्य रणछोड़दासजी महाराज द्वारा स्थापित सद्गुरु संघ ट्रस्ट एवं दूसरे स्थान में भारत एक ग्राम-प्रधान देश है अत: समाजसेवी आदरणीय नानाजी देशमुख ने ग्रामोदय विश्वविद्यालय की यहाँ स्थापना की, तीसरे विशेष अभिमत एवं श्रीराम की प्रेरणास्वरूप 'जिन्हें परम प्रिय खिन्न....' पूज्य जगद्गुरु रामभद्राचार्यजी द्वारा स्थापित विश्व का प्रथम विकलांग विश्वविद्यालय एवं पंचम पीठ के रूप में तुलसी पीठ की स्थापना की.

मन्दाकिनी - ऐसा चित्रकूट जहाँ सुरसरि धार नाम मन्दाकिनि। सो सब पातक पोतक डाकिनि।। जो अविरल गति से प्रवाहित हो रही हो एवं पयस्वनी सरयू आदि जहाँ तीन नदियों का संगम हो, त्रिवेणी हो, और वर्तमान में भी जहाँ दूध की धारा के भी दर्शन होते हों, और प्रतिवर्ष चित्रकूटवासी दूध की धारा का आज भी वर्ष में एक बार दर्शन करते रहते हैं. ऐसी पुनीत मन्दाकिनी नदी जो भारत की सभी नदियों से भिन्नता रखते हुये दक्षिण से उत्तर दिशा में बहने वाली हो एवं पञ्चप्रयाग, एक प्रयाग की कौन कहै! यहाँ तो पञ्च प्रयाग तीर्थ भी विद्यमान है. जहाँ पञ्च धाराओं के एक साथ संगम के दर्शन होते हैं.

ऐसा चित्रकूट जहाँ श्रीराम ने राघव प्रयाग की मान्यता देकर वेद एवं विश्व प्रसिद्ध प्रयागराज को भी सीख दी हो.

उपचार - ऐसा चित्रकूट जहाँ सरलतम रीति से उपचार विधि से पराकाष्ठा प्रतिपादित हो, प्रणामस्वरूप 'अवलोकत अपहरत विखादू.'

संवेदनशीलता - ऐसा चित्रकूट जहाँ स्थूल (जड़) संवेदनशील हो, प्रमाणस्वरुप 'प्रभु पद अंकित अवनि विसेषी.'

सुन्दरता - ऐसा चित्रकूट जहाँ 'सुन्दरता कह सुन्दर करई' चरितार्थ हो, उदाहरणस्वरूप श्रीराम ने यहीं के पुष्पों से (वनस्पति से) श्रीकिशोरीजी का श्रृँगार किया था, 'एक बार चुन कुसुम सुहाये, निज कर भूषण राम बनाये'.

सुपास - जहाँ सुपास मिले वहीं व्यक्ति को निवास का आनन्द प्राप्त होता है. चाहे वह देव हो या प्राणी-मात्र. उदाहरणस्वरूप भगवान् श्रीराम ने चित्रकूट में लगभग बारह वर्ष बिताये क्योंकि यहाँ उन्हें सुपास मिला, प्रमाणस्वरुप 'जहाँ तुम्हार सब भाँति सुपासु'.

'प्राणी-छिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पंचरचित यह मध्यम सरीरा।' ये सभी तत्त्व चित्रकूट में विशेष गुणों के रूप में प्रचुर मात्र में विद्यमान हैं. मात्र पावक पर आपको सन्देह होगा तो इसमें मेरा मत है कि ऋषियों का तप ही चित्रकूट का पावक तत्त्व है जो इस भूमि के कण-कण में विद्यमान है.

यदि हम ऐसा सोचें कि श्रीराम = मर्यादा-स्वरूप हैं एवं माता सीता = ममता-स्वरूप हैं एवं श्रीलखन = शक्ति-स्वरूप हैं तो हमारा चित्रकूट ही ऐसा स्थल है जहाँ शक्ति, माता एवं मर्यादा से अनुशासित होती है. ऐसा दर्शन भी चित्रकूट का है, ऐसा मेरा मत है.

अंत: हमारा विशेष चित्रकूट एक गंभीर शोध का महत्वपूर्ण स्थल है, विषय चाहे जो भी हो, आध्यात्मिक, धार्मिक, प्राकृतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक दृष्टि से भी शोध की प्रचुर संभावनाएँ हैं. यहाँ के दोनों विश्वविद्यालयों को चित्रकूट पर शोध करना ही चाहिये क्योंकि कहावत है - 'जो प्रतिपालय वही नरेशू', और ये विश्वविद्यालय चित्रकूट की भूमि पर ही फल-फूल रहे हैं -

'कहाँ लौ बखानै चित्त, चित्र चित्रकूट को.'

गीत

प्रो. भागवत प्रसाद मिश्र

तुम हमारी दृष्टि हो, दृष्टव्य हो।
तुम्हीं गति हो औ' तुम्हीं गन्तव्य हो।।

दृष्टि क्या डाली, प्रभामण्डल बना,
नयन का विस्तार, नभमण्डल बना,
रश्मियों का रथ चला जब पूर्व से
नवग्रहों के साथ रवि-मण्डल बना,
आदि से ही जो अनिश्चित है यहाँ
उस अनिश्चय का तुम्हीं भवितव्य हो
तुम हमारी दृष्टि हो, दृष्टव्य हो।।

नियति ने जब नेत्र खोले, तब लगा
सृष्टि का चिर-सत्य कितने पास है।
कर बढ़ाते ही तिरोहित सब हुआ,
शून्य का ही रह गया आभास है।
अंश अंशों में विलय जब हो गया
पृथकता की भावना ह्रन्तव्य हो।

तुम हमारी दृष्टि हो, दृष्टव्य हो।।
ब्रह्म हो तुम, हम तुम्हारी सृष्टि हैं,
जो बनाओगे वही तो बनेंगे.
रूप-रंग-आकार जो दोगे हमें
पात्र हैं, हम तो उसी में ढलेंगे.
सूत्रधारी! नृत्य तो हम कर रहे,
पर बताओ तो कि क्या मन्तव्य है
तुम हमारी दृष्टि हो, दृष्टव्य हो।।

मँगतों का व्यापारी

मधुप शर्मा

नर नारी के कोलाहल और अनेक प्रकार के वाहनों की आवाज़ों से मुंबई शहर का वातावरण लगभग चौबीसों घंटे गूँजता रहता है. विहंगम दृष्टि से देखने वालों को ऊँची-ऊँची विशाल अट्टालिकाओं के बीच-बीच में खचाखच भरी हुई सड़कें ऐसी जान पड़ेंगी जैसे किसी घाव में कुलबुलाते हुए कीड़े. लेकिन 'शिव पंडाल' शहर के बीचोंबीच होते हुए भी शहर के कोलाहल से कुछ दूर, कुछ अलग-सा है. इसके चारों ओर काफ़ी दूर-दूर तक कुछ छोटी-छोटी कच्ची-पक्की-सी कोठरियों के अलावा और कुछ दिखाई नहीं देता. न उधर से कोई मोटर, टैक्सी या रिक्शा गुज़रता है, और न ही कोई विक्टोरिया वाला, 'खाई के पान बनारस वाला' गा-गाकर चाबुक घुमाता हुआ निकलता है. कोई सफ़ेदपोश बाबू भी इधर से होकर अपने काम पर जाता हुआ कभी दिखाई नहीं दिया. हाँ, इन कच्ची-पक्की कोठरियों में रहने वाले मिल मज़दूर ही, सवेरे शाम आते-जाते, यहाँ के शान्त वातावरण को विचलित-सा कर जाते हैं.

शिव पंडाल न तो कोई शिव का मंदिर है और ना ही किसी शिव-भक्त का निवास-स्थान. यह एक खुला अहाता है, पाँच-छः फुट ऊँची, टूटी-फूटी दीवारों से घिरा हुआ. इसके एक कोने में, काफ़ी बड़े हिस्से पर टीन और खपरैल की छत है. प्लास्टिक और टाट के टुकड़ों को जोड़-जोड़कर छत और अहाते की दीवार को मिला दिया गया है. इस हिस्से को शैड कहा जाता है. दूसरी तरफ़ लकड़ी का एक पुराना फाटक है. फाटक के पास ही दायें हाथ को एक कोठरी है. कोठरी के आगे एक छोटा-सा बरामदा और उसके आगे एक छोटा-सा चबूतरा. शैड मँगतों के सोने-बैठने के काम आता है और इस कोठरी में रहता है मँगतों का व्यापारी शंभू चौधरी.

रोज़ सवेरे दिन निकलने से पहले ही, इस अहाते में कुछ गिने-चुने लोग इकट्ठे होते हैं, जिन्हें ठेकेदार कहा जाता है. शंभू चौधरी एक-एक करके मँगतों की नीलामी करता है और ठेकेदार बोली लगाते हैं. सबसे ज़्यादा बोली लगाने वाले को मँगता दिन-भर के लिए मिल जाता है. कोई जमाना था जब बोली दो आने-चार आने से शुरू हुआ करती थी, लेकिन अब मँहगाई को देखते हुए शंभू चौधरी कम-से-कम चार रुपए से शुरू करता है. और इस मंडी में कोई मँगता जितना ज़्यादा अपाहिज़, नकारा या दयनीय होता है, उसकी बोली उतनी ही ज़्यादा लगती है, क्यूंकि उसे उतनी ही ज़्यादा भीख मिलने की संभावना होती है. और या फिर यहाँ दाम मिलता है जवान औरत का, जिसकी दरिद्रता पर तरस खाकर नहीं, बल्कि उसके फटे हुए कपड़ों से झाँकते हुए अंगों को देखकर राहगीर अपनी हवस को कुछ जगाता है, कुछ मिटाता है और कुछ न कुछ दे ही जाता है.

चौधरी के पैसे चुकाकर ठेकेदार मँगतों को अपनी हाथ गाड़ी में भरता है और उन्हें ख़ास-ख़ास सड़कों की ख़ास-ख़ास जगहों पर बिठा देता है. दिन भर भीख में मिली हुई नक़दी शाम को ठेकेदार के झोले में जाती है. हाँ, खाने की चीज़ कोई दे दे तो अलबत्ता वह खा सकता है. लेकिन नक़दी छिपाने की कोशिश करने पर न सिर्फ़ पिटाई होती है, बल्कि दूसरे दिन उस पर कोई बोली नहीं लगाता. रात होते-होते उन्हें फिर अपनी हाथ गाड़ी में भरकर चौधरी के यहाँ पहुँचाना ठेकेदार का काम है. और चौधरी उन्हें देता है सवेरे शाम दो-दो रोटियाँ और सोने की जगह.

जिन मँगतों की नीलामी नहीं हो पाती, उन्हें चौधरी ख़ुद ही हाँक देता है, भीख माँगने के लिए. उन्हें भीख माँगने के नये-नये तरीके सुझाये जाते हैं, और यह भी हिदायत कर दी जाती है कि चार रुपए से कम कोई लाया तो शाम को रोटी नहीं मिलेगी.

बरसात का मौसम लगभग समाप्त हो चुका था. कुछ बिछड़ी पिछड़ी-सी घटाएँ अपने अरमान पूरे किया चाहती थीं. सागर की छाती पर से धुएँ के गुबार की तरह ऊदी-ऊदी घटाओं ने उठकर स्वच्छ नीले आकाश को घेर लिया. शाम की लालिमा ने घटाओं की कालिमा में मिलकर एक चिकनी-चिकनी-सी नीलिमा उत्पन्न कर दी थी. शीतल बयार के झोकों ने शंभू चौधरी की उलझी लटों को छेड़ा तो उसके हृदय में गुदगुदी-सी पैदा हुई. आख़िरी कश लेकर उसने सुल्फ़े की चिलम ढेरी कर दी. दीवार के सहारे खड़ी हुई बैसाखी उठाई और लगड़ाता हुआ शैड की तरफ़ चला.

दिनभर माँगने के बाद सारे मँगते अपनी-अपनी गुदड़ियों में वापस आ चुके थे. कुछ अपने घावों की पट्टियाँ ठीक कर रहे थे. कुछ भीख में मिले हुए रोटी या मिठाई के सूखे टुकड़ों को कुटक रहे थे. कुछ चुपचाप लेटे हुए, शायद अपने मुकद्दर पर मुस्कुरा या रो रहे होंगे.

चौधरी को देख कर मँगतों ने अपने टीन के डिब्बों में से पैसे निकालकर गिनने शुरू कर दिये थे. बिना कुछ बोले चौधरी पैसों को फिर से गिनकर अपने कंधे पर लटके हुए झोले में डालता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था. एक जगह रुककर सक्रोध स्वर में बोला, 'यह क्या? बस एक ही रुपया दिनभर में! माँगना भी नहीं जानती?'

रामू, एक ग्यारह-बारह साल का बालक, चौधरी की अर्दली में रहा करता था. इस समय भी पीछे-पीछे चुपचाप चला आ रहा था. चौधरी के स्वर में क्रोध का पुट देखकर झट आगे बढ़कर बोला, 'हाँ चौधरी, सचमुच यह माँगना नहीं जानती. कल ही तो आई है. आज पहली बार इसे माँगने बिठाया, वह भी अपने ही मुहल्ले में.'

तभी पास ही में किसी ने चिलम के लिए आग जलायी तो उसकी तेज रोशनी में चौधरी की कमज़ोर नज़र ने भी साफ़-साफ़ देख लिया, चिथड़ों में से झाँकता हुआ मँगती का थका-सा यौवन, लंबे, पर उलझे हुए बाल, छोटा-सा गोल-गोल साँवला चेहरा और एक डरी-डरी-सी हरिणी-सी आँख. तभी उसे याद आया हरखू ने सौदा करते समय कहा भी तो था, 'चौधरी यह तो एक आँख से मार खा गई, दोनों आँखें होती तो नहला-धुला कर सीधा हीराबाई के कोठे पर ले जाता और कम से कम पाँच हज़ार मिलते. तुम्हें पाँच सौ में इसीलिए दे रहा हूँ.'

चौधरी ने उसे देखा तो तब भी था जब हरखू उसे लेकर आया था, लेकिन इस समय पता नहीं रात के अँधेरे की वज़ह से, या सुल्फ़े के नशे की वज़ह से उसके दिल में शैतान ने करवट ली. पैशाचिक-सी मुस्कान के साथ उसने फिर एक बार मँगती को ऊपर से नीचे तक देखा. डरी हुई मँगती और भी सहम गई. डरी हुई तो इसलिए भी थी की पंडाल के नियमों के अनुसार आज उसे भूखा ही रहना पड़ेगा. लेकिन चौधरी की नज़रों ने तो उसके रोम-रोम को कँपा दिया. उसकी घबराहट और दयनीय मुद्रा ने, चौधरी की नज़रों में उसे और भी क़ीमती बना दिया. वह एक बार फिर मुस्कुराया और चलते-चलते उसने पूछा, 'तेरा नाम क्या है री?'

'गंगा बताती है अपना नाम चौधरी, गंगा. आज इसे माफ कर दो, नई है न.' मँगती के कुछ कहने से पहले ही रामू बोल उठा.

सबको रोटी बाँटने का हुक्म देकर चौधरी अपनी कोठरी की ओर चला गया.

चौधरी ने कोठरी में पहुँचकर पैसों को एक बार फिर गिना और कपड़े की थैली में डालकर आलमारी में रख दिया. कोठरी में कुछ उमस थी. उसने चटाई और मैला चिकना तकिया उठाया और बाहर चबूतरे पर डालकर लेट गया. वह आकाश में तैरती हुई काली-सफ़ेद बदलियों को घूरने लगा तो उनमें उसे जिन्न-भूतों की-सी बड़ी-बड़ी शक्लें बनती-बिगड़ती दिखाई दीं. एक काले बादल की ओट से झाँकते हुए चाँद को देखकर अचानक उसे सहमी हुई गंगा की याद आ गई. हाँ, बिल्कुल वही तो है. वह रहा गोल-गोल चेहरा और....लंबे-लंबे बाल....वह सुतवाँ नाक....अरे लो....बाल ग़ायब....नाक भी ग़ायब....चेहरा भी मिट गया.

उसके बाद काफ़ी देर तक चौधरी आकाश की ओर देखता रहा, एकटक. सोच रहा था, फिर किसी न किसी बादल की ओट से गंगा झाँकेगी ज़रूर.

रात के साढ़े आठ बज चुके थे. रामू सबको रोटियाँ बाँटकर और ख़ुद खाकर, बरामदे के कोने में बने अलाव में से चौधरी की चिलम के लिए आँच कुरेद रहा था. आहट पाकर चौधरी ने पुकारा. 'अरे रामू है क्या? यहाँ आ बे.'

'चिलम भरकर ला रहा हूँ.' रामू बोला.

गुड़गुड़ी पर चिलम रखकर रामू ने आगे बढ़ाई तो चौधरी उठकर बैठ गया. अपनी जैकेट की जेब में से बीस रुपए का एक नोट निकालकर रामू की ओर बढ़ाते हुए बोला, 'जा जरा रॉकेट तो ले आ.'

नोट लेते हुए रामू ने कहा, 'शाम को तुमने बूटी पी थी. उसके बाद सुल्फ़े के कश लगाते रहे और अब रॉकेट भी चाहिए. हर तरह का नशा करोगे आज?'

'बकवास बंद. कहा जाये सो किया कर.'

'ठीक है. एक कुल्हड़?'

'अबे तू भी सचमुच वही रहा, क्या कहते हैं वह....भैंस का भैया. देखता नहीं, ये गरजते हुए बादल, यह ठंडी-ठंडी हवा और वह....'

चौधरी कहना चाहता था और वह उभरती हुई जवानी, कच्ची कली गंगा....पर ये शब्द उसके ओठों में ही बुदबुदाकर रह गए और प्रत्यक्ष में उसने कहा, 'आज कुल्हड़ से क्या काम चलेगा? एक बोतल ही ले आ. आधी कल के लिए रख लूँगा.'

रामू चलने लगा तो चौधरी ने फिर पुकारा, 'अरे सुन, यह ले एक नोट और....समझा.'

'कुछ कहो तो समझूँ.'

'एक तो ले आ बोतल....और एक डबल आमलेट बनवाना, वह नुक्कड़ वाले ईरानी के होटल से....और....और....और आधा पैकेट ले लेना ऊँट की सिगरेट....और बस जा....हाँ, कुछ पैसे बचेंगे, अपने लिए चार-छः बीड़ी लेता अइओ.'

'बात क्या है, बड़ा मस्का मार रहे हो आज? आज तो मैं भी ऊँट की सिगरेट पीऊँगा.'

'चल चल हरामी कहीं का. एक-एक पैसे का हिसाब लूँगा. जल्दी जा और जल्दी आ.'

****

चौधरी की बोतल लगभग आधी समाप्त हो चली थी. धुनकी में बोला, 'अरे....रामू पीएगा थोड़ी-सी....ले आज.... आज तू भी पी. उठा वह गिलास आले में से....ले.'

'दे ही रहे हो तो एक घूँट तो दो.'

'नहीं न....हीं बहुत कड़वी है....बच्चे....ज़्यादा नहीं पीते....'

'इससे तो ओंठ भी गीले नहीं होंगे चौधरी.'

'अच्छा ले....थोड़ी-सी और....पर नहीं नहीं....बाद में दूँगा पहले....तू मेरा काम कर....वह....वह क्या नाम बताया था....वह नई छोकरी....तीन रुपए....कम दिए न साली ने....जा उसे बुला के ला....आज उसे माँगना सिखा दें....ही ही ही....'

रामू अपनी जगह से उठा भी नहीं था कि किसी ने बाहर का फाटक खटकाया. थोड़ी देर के लिए दोनों चुप हो गए. फिर चौधरी ने ही कहा, 'कौन आ गया साला इस वक़्त. देख तो जरा. कोई औरत का ग्राहक भी हो तो....कह देना....आज नहीं....कल आए....'

रामू ने फाटक की खिड़की खोली. सिपाही सखाराम था. यह रात के समय इसी इलाक़े की गश्त पर होता है. आज भादों की घटाओं ने इसके हृदय में भी गुदगुदी-सी की, तो चला आया चौधरी के पास, अपनी हवस पूरी करने के लिए. घुसते ही उसने चौधरी के हाथ की बोतल पर हाथ डाला और बोला, 'वाह चाचा, अकेले ही अकेले.'

चौधरी उसे देखते ही मन ही मन जल-भुन गया था फिर भी उसने कहा, 'आओ....आओ....बहुत दिनों में आए. अरे तू....कहाँ चला?'

'गंगा को बुलाने को कहा था न तुमने चौधरी.'

'चुप बैठ....हरामी....कहीं का.'

चौधरी नहीं चाहता था कि सखाराम के होते हुए गंगा को बुलाया जाए. बोला, 'वह गिलास....सखाराम को दे दे.'

लेकिन सखाराम गिलास पकड़ने से पहले ही बोतल से घूँट भर चुका था. और गंगा को बुलाने की बात भी उसके कान में पड़ चुकी थी. बोला, 'बुलाओ, बुलाओ देखें तो सही कैसी है तुम्हारी गंगा. कोई नई चिड़िया मालूम देती है.'

'देखोगे तो देखते ही रह जाओगे.....चाँद का टुकड़ा है....एकदम.' चौधरी बोला.

'चाँद का टुकड़ा हो चाहे धरती का. है तो औरत ही. और तुम तो जानते हो चौधरी, बुरे काम के लिए कोई भी औरत बुरी नहीं होती.'

'यह तो बड़ी....मासूम है....कच्ची उमर की....कच्ची कली.'

तब तो आज रात हम यहीं सोयेंगे.'

'नहीं नहीं....आज नहीं....तुम कल....आना....आज तो मैं....'

'कच्ची उमर के साथ तेरे जैसे बुढ़ऊ का क्या काम? उसे तो मेरे जैसा जवान चाहिए.'

'तुझे कहा न कल....आ जाना. कल भी....बीस रुपए लूँगा तेरे से....कोई और होता....तो पचास से कम नहीं....'

'बीस रुपए मेरे से! पुलिस वाले से?'

'तुम पुलिस वाले....हो बड़े हरामखोर....तुम लोगों को हर चीज़....फ़ोकट में माँगता है....शराब भी....शराब भी....सब चीज़....ठीक है, ठीक है....पर तू कल आना.'

कल कल कहते और आज आज सुनते दीवार के सहारे बैठा हुआ चौधरी ऊँघने लगा. सखाराम ने भी जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े घूँट भरे और आख़िरी गिलास भरकर बोला, रामू....तू है बड़े काम का....बस जरा बड़ा हो जा....तुझे पुलिस में....भर दूँगा....नहीं भर्ती करवा दूँगा....फिर सारी उमर ऐश....करना. हैं....फ़िकर

नहीं कर....सारी उमर ऐश....जा अब बुला के....ला तो....चौधरी की चिड़िया को....नहीं तो मैं चलूँ....तेरे साथ वहीं.'

'नहीं नहीं हवलदार साहब, आप वहाँ कहाँ....मैं बुला के लाता हूँ न उसे, यहीं.'

'हाँ....हाँ....तू है बड़े काम का. यहीं ठीक रहेगा, कोठरी में. यह चौधरी तो गुल....और बत्ती बंद तो अँधेरा धुप्प....ही....ही....ही....'

रात के ग्यारह बज चुके थे. गंगा शैड के एक कोने में, दीवार के सहारे बैठी, घुटनों में सिर छिपाए सिसक रही थी. रामू के पैरों की आहट ने उसे चौंका दिया. बेसाख्ता उसके मुँह से निकला, 'हरखू.'

रामू को पहचान कर, शर्म से उसका सिर झुक गया. बोली, 'मुझे लगा....'

'तुम्हें लगा की हरखू आया है तुमसे मिलने. गंगा, सुन.' पास बैठते हुए रामू बोला, 'मेरी तरफ देख.'

अनेक आशंकाओं से डरी हुई गंगा की सिसकियाँ बढ़ गई थीं. बड़ी मुश्किल से उसने सिर उठाया और बोली, 'क्या?'

'हरखू ने तुम्हें कहा होगा न कि शहर में उसकी बड़ी अच्छी नौकरी है, घर है.'

गंगा बोल तो नहीं पाई. उसने हाँ में सिर हिलाया.

'और हरखू ने तुम्हें यह भी कहा होगा कि शहर आकर वह तुमसे शादी कर लेगा. तुम्हें बड़े आराम से रखेगा. कहा था न?'

गंगा ने फिर एक बार हाँ में सिर हिलाया, और और भी ज़्यादा सिसकने लगी. रामू कहता जा रहा था, 'वह हरामी का पिल्ला कभी तुमसे मिलने नहीं आयेगा. वह चौधरी के पास तुम्हें पाँच सौ रुपए में बेच कर गया है. उसका धंधा यही है. पता नहीं उसने कितनी लड़कियों की ज़िन्दगियाँ बर्बाद की हैं, इसी तरह बहला-फुसलाकर. वह....वह....हरामी का पिल्ला....'

अब मेरा क्या होगा रामू भैया?' कहते हुए गंगा ने आँसुओं से भीगा हुआ चेहरा रामू के कंधे पर रख दिया और और भी ज़्यादा बिलखने लगी.

रामू सोच रहा था, तीन साल के बाद आज उसे किसी ने 'रामू भैया' कह कर पुकारा है. उसकी जमुना दीदी भी प्यार से उसे रामू भैया ही कहा करती थी. एक दिन जमुना दीदी खेत में अकेले काम कर रही थी. मुखिया के लड़के ने उसकी इज़्ज़त लूट ली. दीदी ने उसी रात कुएँ में कूदकर अपनी जान दे दी. सारा गाँव जानता था लेकिन मुखिया के डर से किसी ने जुबान नहीं खोली. मेरा बाप तो कई साल पहले ही मर चुका था. बेटी के ग़म में माँ भी कुछ ही महीनों में चल बसी. मैं यतीम हो गया. मैं अकेला रह गया, घर में, गाँव मे, दुनिया में. ना मैं माँ को बचा सका, न मैं जमुना दीदी को बचा सका, पर आज यह गंगा दीदी, अचानक और बरबस मिली हुई गंगा दीदी....नहीं इसे मैं मरने नहीं दूँगा....इसे मैं मरने नहीं दूँगा.....' वह गंगा के आँसू पोंछने लगा. तभी अँधेरे और सन्नाटे को चीरती हुई एक आवाज़ कड़की, 'रामू! कहाँ मर गया?'

दैत्याकार सखाराम कोठरी के दरवाजे पर खड़ा था. रामू ने कहा, 'मैं अभी आया दीदी.'

****

दूसरे दिन दोपहर के समाचार पत्रों में छपा, 'मँगतों के अहाते में एक सिपाही का ख़ून. मज़बूर और अपाहिजों से भीख मँगवाने वाले शंभू चौधरी गिरिफ़्तार. पोस्ट मार्टम की रिपोर्ट से पता चला है कि सखाराम हवलदार नं. ८१४ काफी शराब पीये हुए था. वह पिछली रात उसी मुहल्ले में ड्यूटी पर था. शंभू चौधरी भी नशे में था. पुलिस का अनुमान है कि दोनों में किसी बात पर कहा-सुनी हुई होगी और शंभू

चौधरी ने चाकू से सखाराम का पेट चाक कर दिया. भीख माँगने वालों में से एक बारह साल का लड़का और एक चौदह साल की लड़की भी ग़ायब हैं. पुलिस को उनकी तलाश है. हो सकता है, वे इस ख़ून के चश्मदीद गवाह हों.

एक चाह : एक सलाह

डॉ. अम्बाशंकर नागर

मैं चाहता हूँ
इस कविता को
कोई भी न पढ़े

और यदि पढ़े
तो मुझसे यह न पूछे,
मैंने ऐसा क्यों लिखा.

कभी
कोई
किसी से
प्रेम न करे!

और करे
तो
वरे,
या
हरे,
किन्तु
न परिहरे!

और वरे (या हरे)
तो
उसी को अनुसरे
उसी को नमन करे!

विरह विगलित कदम्ब

पुष्पा भारती

साहित्य सहवास में चारों ओर बड़े करीने से हरियाली उग आई थी। अपनी मेहनत की सफलता पर खुश भी थे भारती जी कि सहसा उनका वही मूल भागवत-प्रेम उनके मन में हिलोरें लेने लगा और जाने कहाँ भटक-भटककर ले आए कदंब वृक्ष का पौधा, खुद उसकी देखरेख की। बालकनी में खड़े होकर उसकी बढ़त देखते और प्रसन्न होते रहते। कुछ वर्ष बाद जब उस वृक्ष में पहली बार फूल आए तो उनके आह्लाद का कोई छोर नहीं था। लरजती आवाज़ में दसियों मित्रों को फोन किए गए, निमंत्रण दिए गए- कदंब के फूल खिले देखने के लिए। मित्र ही नहीं, रास्ता चलते अपरिचित लोग भी ठिठककर फूल देखते थे उन दिनों। उन्हीं दिनों भारती जी ने लिखी थी 'कदंब-पोखर' नाम की कविता। और याद है मुझे कदंब से जुड़ा एक मीठा-मीठा झगड़ा भी।

खैर, झगड़े, मान मनौवल की बात यहीं छोड़कर मैं आपको बताऊँ कि कदंब का वृक्ष धीरे-धीरे बहुत विशाल वृक्ष बन गया था। खूब ढेर सारे बड़े-बड़े फूलों की शोभा देखते ही बनती थी। उसे खूब सराहना मिली तो भारती जी को कृष्ण से संबंधित 'छितवन' वृक्ष की याद आती- छितवन की छाँह में नटवर नागर कृष्ण कन्हैया जब तमाम गोपियों के साथ शरत पूर्णिमा की रात में रास रचाते थे उसे महारास कहा जाता था, क्योंकि उस रात भगवान के नृत्य की गति इतनी तेज़ होती थी कि हर गोपी यही समझती थी कि कृष्ण केवल उसी के साथ नाच रहे हैं। जाने कहाँ-कहाँ भटके थे इस पौधे की खोज में। दसियों जगह की खाक छानने के बाद पता चला कि 'सप्तपर्णी' नाम से जाना जानेवाला यह वृक्ष दिल्ली की एक नर्सरी में उपलब्ध है। अविलंब लाया गया और अपनी स्टडी के पिछवाड़े से सटी ज़मीन पर उसे रोप दिया गया। जैसी सँवार की गई, उससे वह भी शीघ्र ही पौधे से वृक्ष बन गया। शाख-दर-शाख दनादन फूटने लगी और एक गझिन छायादार वृक्ष खड़ा हो गया। हर शाख पर सैंकड़ों पत्तियाँ ऐसे निकलतीं कि सात-सात पत्तियों का एक संपुट-सा बन जाता और शरद ऋतु आते-आते उन पत्तियों के बीच में सैंकड़ों कलियाँ फूट आती थीं और शरत पूनो पर तो आलम यह होता था कि पत्तियाँ नज़र ही नहीं आती थीं। पूरा-का-पूरा वृक्ष नन्हे-नन्हे फूलों के गुच्छों से भर जाता था। महक ऐसी तेज़ और नशीली कि सारे वातावरण को मदहोश बना दे। उस नशीली सुगंध का भरपूर आनंद लेने के लिए 'शाकुंतल' में रहनेवाले हमें सातों परिवार शरत पूर्णिमा की चाँदनी में इमारत की छत पर इकट्ठा होते थे, बच्चियाँ नृत्य करती थीं, कोई गाना गाता, कोई कविता सुनाता और सब मिलकर मेरी बनाई खीर खाते। बड़ी सुहानी यादें हैं छितवन की।

कदंब और छितवन के अतिरिक्त कृष्ण कथा से जुड़े फरद के वृक्ष की बात भी सुनिए। सन् १९५६ की बात है। हम लोग पहले कोणार्क में सूर्य मंदिर के दर्शन करने गए, फिर वहाँ से सड़क के रास्ते जगन्नाथ पुरी की ओर चले। रास्ते में हमने एक गाँव में देखा, सड़क के दोनों ओर फरद के पेड़ लगे थे, जिन पर डहडह लाल रंग के कटोरीनुमा फूल खिले थे। फूल तोड़ नहीं सकते थे, क्योंकि पेड़ खासे ऊँचे थे। लेकिन नीचे ज़मीन फूलों से पटी पड़ी थी। मैंने ताज़े-ताज़े फूल चुनकर-बटोरकर अपने आँचल में भर लिए। पुरी पहुँचकर सीधे मंदिर गए और जब जगन्नाथ जी के दर्शन किए तो आँचल के दोनों छोर पकड़कर ढेर-के-ढेर फूल मैंने विग्रह पर बरबस बरसा दिए। पुजारी भी विहँस उठा था। भारती जी को मेरी वह भंगिमा इतनी भा गई थी कि उसकी याद में फरद का वृक्ष भी लगाया गया। साहित्य सहवास में बड़ा वृक्ष लगाने की उपयुक्त जगह नहीं बची थी- भारती जी का कुछ लालच यह भी था कि वृक्ष ऐसी जगह लगे जहाँ अपने घर में बैठे-बैठे हमें वह दीख सके। सो घर के सामने वाली बिल्डिंग के पीछे की ज़मीन पर उसे रोप दिया। पेड़ बड़ा हुआ। मौसम आने पर वही दहकते लाल-लाल फूल खिलने लगे। थोड़ी-सी ही दूरी पर यहाँ एक बर्ड सैंक्चुअरी हैं, जहाँ से ढेरों तोते हमारी कॉलोनी के वृक्षों की फुनगियों पर आकर बैठते हैं। एक बार हमने देखा कि कुछ तोते फरद के फूलों में अपनी चोंच डालकर रस पी रहे हैं। लाल-लाल फूल हरे-हरे तोते! ऐसा मनभावन दृश्य था कि भारती जी ने सड़क की

ओर खुलनेवाली खिड़की को तुड़वाकर वहाँ बड़े-बड़े काँच की पारदर्शी दीवार जैसी खिड़की बनवा दी, सुबह वहीं बैठकर चाय पीते और अख़बार पढ़ते थे।

गुलमोहर, अमलतास, शेषनाग, रक्त-अशोक, बाँस, आम, बादाम, शिरीष, चंपा, चमेली, रातरानी, मधुमालती, गंधराज, हरसिंगार, कचनार वगैरह-वगैरह सैंकड़ों जातियों के फल-पत्तों से सजे साहित्य सहवास की बाकी सब हरियाली की बात छोड़कर अब कृष्ण से संबंधित इन्हीं तीन वृक्षों की वह बात बताती हूँ जो सिर्फ़ मैं जानती हूँ। ४ सितंबर, १९९७ की रात को भारती जी सोए तो हमेशा के लिए सो गए। सुबह केवल शरीर था, आत्मा विलग हो चुकी थी। उन्होंने अपने हाथों से, बड़े प्यार से इन तीनों वृक्षों को रोपा था, अपनी पूरी ममता देकर सींचा और सँवारा था। उन कदंब, फरद और छितवन ने उनके जाने का सोग जिस तरह अपने ऊपर झेला कि मैं खुद पर शर्मिंदा होती हूँ कि मैं ज़िंदा कैसे हूँ।

बंबई में जून के महीने में बरसात आती है। बरसात के एक पखवारे पहले से कदंब में गोल-गोल गुठलियों की शक्ल की कलियाँ दिखाई देने लगती थीं और बारिश के तीन-चार दिन पहले उन गुठलियों पर वासंती आभा लिए सैंकड़ों रेशे निकल आते थे और पूरा पेड़ इतना सज जाता था कि अगर संवेदनाएँ गहरी हैं तो कल्पना में कृष्ण की बाँसुरी भी सुनाई दे जाए। पर क्या भारती जी के देहावसान के बाद जो जून आई तो बरसात आ गई, पर पूरे विशाल वृक्ष पर आठ-दस ही फूल खिले, बाकी कलियाँ यों ही गुठलियों की शक्ल में नीचे गिर गईं। धीरे-धीरे तो वे गुठलियाँ निकलनी भी कम हो गईं। फूल भी इक्का-दुक्का ही दिखाई देते थे। अब दस बरस बाद तो लोग भूलने ही लगे हैं कि इस पेड़ पर कभी फूल आते थे- कोई कहता है, हमारे कदंब को नज़र लग गई, कोई कहता है, पता नहीं क्या बीमारी लग गई है, पर किससे बताऊँ कि... यह घर है, पर भारती जी नहीं- कदंब का वृक्ष है, पर फूल नहीं।

जगन्नाथ जी पर हुलसकर फूल बरसाने का साक्षी वह फरद भी अगले बरस आई एक दिन तेज़ आँधी और बरसात में पूरा-का-पूरा वृक्ष अरअराकर सड़क पर गिरा। तोतों को क्या मालूम कि जिन हाथों ने उसे इतने प्यार से लगाया था, उन उँगलियों का और अपनी ओर निहारती आँखों का वियोग नहीं सहन कर पाया और अपना वह रस और लाल दहकते फूल लिए-लिए चला गया, शायद उनकी खोज में कहीं...।

---

१८ जुलाई, १९८९ को भारती जी को बहुत भयंकर दौरा पड़ा दिल का। क्लीनिकल डैथ भी हो गई थी, पर बड़े चमत्कारिक ढंग से डॉक्टर बोर्जेस ने उन्हें बचा लिया और वे लगभग तीन महीने अस्पताल में रहे- ठीक होकर जब घर आए तब भी डॉक्टर ने पूर्ण आराम की सलाह दी थी। ज़िद की कि मेरा बिस्तर स्टडी में ही लगा दो- यहाँ से गदराया हुआ छितवन दिखाई देता है। उसकी खुशबू बहुत सुकून देती है। वही किया गया- छितवन की छाँह में उन्होंने आराम किया और धीरे-धीरे पूरी तरह स्वस्थ हो गए।

फिर उस बरस यानी १९९७ में भी छितवन के पेड़ पर वैसे ही गुच्छे-गुच्छे फूल खिल आए थे- वैसी ही सुहानी खुशबू बगरी हुई थी, पर सबकुछ यों ही छोड़कर ४ सितंबर को भारती जी ने हमेशा के लिए विदा ले ली थी। हम इनसानों का रोना-कलपना और आँसू तो सबने देखे, पर कोई नहीं देख पाया कि छितवन अपनी हज़ार-हज़ार आँखों से कितना रोया, कितना रोया कि उसकी आँखों के आँसू भी सूख गए होंगे, तभी न आठ-दस दिन बाद जब शरत पूर्णिमा आई तब हमारी इमारतवाले लोगों ने देखा कि अरे, इस बार फूल खिलने की बजाय मुरझाने क्यों लगे हैं? खुशबू में कसैलापन क्यों आ गया है? लोगों को फिर वही अफसोस लगा कि इस पेड़ को भी लगता है, जड़ में कहीं कीड़े लग गए हैं। मैं किसी को क्या बताती? केवल श्रीमती लीला बांदिवडेकर को बताया कि कदंब की ही तरह यह भी विरह-विगलित है। अगले वर्षों में कदंब की तरह ही इसमें भी धीरे-धीरे फूल आने बंद हो गए। कदंब तो फिर भी दो कमरे दूर था, पर यह तो स्टडी में एकदम करीब बैठे उनको देखता रहा होगा, इसलिए और भी ज़्यादा तड़प उठा होगा। कदंब में कम-से-कम पत्तियाँ तो निकलती हैं, पर यह तो धीरे-धीरे सूखने लगा और देखते-देखते एकदम ठूँठ हो गया। पिछले दो सालों से छत से भी ऊँचा उठा वह विशाल वृक्ष अपनी नंगी शाखाओं की बाँहें पसारे ठूँठ बनकर खड़ा था, एकदम सूख गया था।

बारिश आनेवाली है। कभी यह ठूँठ टूटकर गिरा तो बड़ा नुकसान हो सकता है, इसलिए कल ५ जून को उसे कटवा दिया गया है।

जब वह काटा जा रहा था, उस समय अचानक बड़ी तेज़ हवा चलने लगी थी। खिड़की-दरवाज़े खड़खड़ा रहे थे और धूल-मिट्टी के गुबार घरों में प्रवेश कर रहे थे। अचानक भारती जी की स्टडी पर लगी जाली टूटकर गिरी और बाहर जाकर जो मैंने देखा तो ऊपर की साँस ऊपर, नीचे की नीचे और मैं जड़वत हो गई। हवा तेज़ थी ज़रूर, पर पेड़ तो बालकनी की तरफ़ लगा था, यह टूटी शाखा वर्तुलाकार उड़कर इस खिड़की पर दस्तक देने कैसे आ गई? यह सच है कि कल न उसके पहले चली थीं वैसी हवाएँ, न बाद में चली हैं। क्या तेज़ हवाएँ इसीलिए चली थीं कि इस शाख को उड़ाकर लाना था? उसने खिड़की पर दस्तक दी, जाली से टकराई और खिड़की की मुँड़ेर पर जाकर गिर गई है। अभी भी वहीं पड़ी है। उसकी ओर आँसू से लबालब आँखों से देख रही हूँ। जानती हूँ कि भारती जी की आत्मा तो अब भी इसी स्टडी में बसती है, क्या शाख की बाँहें बढ़ाकर छितवन का वह वृक्ष उनसे अंतिम विदा लेने आया था- या शायद शिकायत करने आई थी यह शाख कि तुमने हमें लगाया था, ये आज काट रहे हैं। या शायद यह मेरे साथ अपनी पीड़ा बाँटने आई थी, उनका स्पर्श प्रतिपल अपने साथ महसूस करती जीती रही हूँ, सो जाते-जाते वह वृक्ष इस टहनी की बाँह बढ़ाकर उन्हें छूने आया था, दुलराने आया था, बतियाने आया था भारती जी से। बार-बार पूछ रही हूँ मुँड़ेर पर लेटी इस शाखा से- मिले वह? छू सकीं उन्हें तुम? देख सकीं? बोल- बतिया सकीं?

मेरी पहुँच से दूर पड़ी है वह। वहाँ तक मेरा हाथ नहीं पहुँच सकता, पर जी हो रहा है, उस शाख को एक बार छू लूँ और महसूस कर लूँ उसे, जिसकी तलाश में वह आई है- प्राणपण से भागी आई है। साझे का दुःख भोगा है हमने। वह तो जड़ से कटकर मुक्त होकर मिलन के लिए आई थी। मैं हूँ कि अभी भी जड़ों से जुड़ी जी रही हूँ। कल से बिना खाए-पिए गुमसुम रो-रोकर जीती रही हूँ- पता नहीं कितना और जीना है उनके बिना।

बारिश

सुमतिन्द्र नाडिग

अनुवादक : उपेन्द्र नाथ 'अनन्य'

देख बारिश, आनंद उठाओ
जब प्रथम बूँद पड़ती है
तब धरती की बास फैलती है
और देती है तुम्हें आमंत्रण
कश लो.
ओले पड़-पड़ाते हैं छत पर
उठाकर हाथ में, ले लो मुख में
और मजा लो शीतलता का.
जब है होती बारिश घनघोर
सड़क बन जाती है नदी
तुम्हारे घर के सामने के
मैदान में जमा हो जाता है पानी
तब तुम जब भी देखते हो
दिखते हैं जल के बुलबुले
सोचो इनको नावें बलून की
जिसमें हवा है खेवती
हवा से करो स्पर्धा
ठीक वैसे ही जैसे कागज़ की नाव, बच्चे

पानी में छोड़ देते हैं
देखो मुड़ना, इन नावों का
धारा के मुताबिक
करो नकल इसकी
और आनंद में डूब जाओ.
जैसे वर्षा का साथ देती जाती है हवा
नववृक्ष हो जाते सराबोर
झटकें जब वे केश
सुखाने के लिए
गिरें जब बूँदें तुम्हारे मस्तक, सिर और
काँधों पर
सोचो, किया सोद्देश्य नववृक्षों ने ऐसा
और मान कर प्यार की निशानी
पड़ी रहने दो उन बूँदों को
और मजा लो इसका.
जब फूटते सैकड़ों बुलबुले
सोचो कि तुम्हें किया इशारा जलदेवी ने
और तुम भी कर दो इशारा
बस! लो मजा.
बड़ी झील में जब तुम देखो
पानी की उठा-पटक को
सोचो इसे शिल्प, जलपरी की काया का
लो मजा इस दृश्य का
गुजरती जब जलपरी
अपना कूल्हा नारी-सी मटकाती
नखरे देखो और लो मजा.
घोर अंधेरे में जब चमकती बिजली
बिसर्पी सी
सोचो उसे दिव्य युवती
और आनंद लो इसका.
जब बादल हैं गरजते
और फाड़ती है बिजली उसे
सोचो इसे इन्द्र का अस्त्र
और आद्य ऊर्जा का अवतार
करो अचरज इस पर
अवलोकन करते हुए
और आनंद मनाओ.
जल है आत्मा का बसंत
अनुभव करो और
लो मजा.

प्रिय विष्णु प्रभाकर जी को उनकी जन्म-शताब्दी पर स्मृति-स्वरूप श्रद्धांजलि के रूप में
उन्हीं के भाव-भीने शब्द
(४/१९६८)
उनको सादर, सस्नेह समर्पित
स्नेह

अहसास

विष्णु प्रभाकर

सिसिफस
हनुमान्
या
अश्वत्थामा
सभी मनुष्य थे
चढ़े और गिरे
लेकिन मैं नहीं गिरूँगा
मैंने अपने अहसास को
कील दिया है.

अभिलाषा

आदित्य मोहन

मन करता है
इस जीवन को
मैं
सफल बनाऊँ.
अगर भाग्य ने
साथ दिया तो
मैं भी
कुछ कर पाऊँ.
जी चाहता है
सफलता की ऊँचाइयों को
मैं
कभी छू पाऊँ;
और
इस सफ़र में
मैं
गलत को न अपनाऊँ.
लेकिन
कुछ करने के
इस सफ़र में,
पहले
मैं
अच्छा इन्सान बन जाऊँ;
तब
मैं
अपनी उपलब्धियों का
जश्न
खूब मनाऊँ.

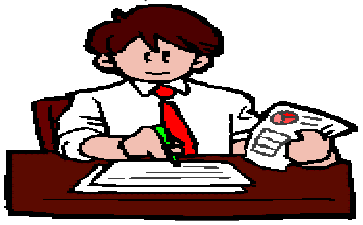

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित